सौ० लज्जावतीजी जैन, विशारद।

वीर-जीवन।

लेखिका—

श्रीमती सौ० लज्जावती जैन विशारद, लखनऊ।

[गृहलक्ष्मी, स्वास्थ्य और सौन्दर्य, गृहिणी कर्तव्य आदिकी लेखिका।]
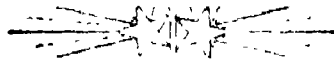
प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६७ [प्रति १०००

झाबुआ निवासी श्रीमती सौ० शाणीबाई, धर्मपत्नी श्री० मोदी पन्नालालजी जैनके स्मरणार्थ "जैन महिलादर्श" के १९ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

मूल्य-आठ आने।

प्रकाशक:
मूलचन्द किसनदास कापडिया
दि. जैन पुस्तकालय

मूलचन्द किसनदास
जैन विजय

मेरे दो शब्द।

वीर प्रभुका यह जीवनचरित्र लिखनेकी मेरी इच्छा बहुत समयसे हो रही थी। क्योंकि हमारे जैन समाजमें वीर जीवनपर छपी हुई पुस्तकोंका अभाव है, जो हैं भी उनका मूल्य इतना अधिक रख दिया गया है कि सर्व साधारण जन पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते।

जिस महान् आत्माने हमारा इतना कल्याण किया था, इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर हा-हाकार करते हुये अज्ञानरूपी तममें पड़े हुये जीवोंको ज्ञानका मार्ग बता हस्तावलम्बन दिया था, जिसने हमारे कल्याणार्थ अपनी आत्माका बलिदान कर दिया था, उस महान् आत्माका जीवनचरित्र हमारे लिये कितना लाभप्रद एवं पूजनीय है इसको पाठकगण स्वयं जान सकते हैं।

वास्तवमें धार्मिक ग्रन्थों और पुस्तकोंका प्रधान उद्देश्य मानव जातिको कुपथकी ओरसे हटाकर सुपथपर लगाना ही है।

वर्तमानमें आर्य-समाज जिस प्रकार अपने धर्म प्रचारार्थ "सत्यार्थ प्रकाश" अल्प मूल्यमें वितरण कर रही है और ईसाइ अपने धर्म प्रचारार्थ "बाइबिल" उर्दू, हिन्दी आदिमें छपवाकर बिना मूल्य बांट रहे हैं, उसी प्रकार क्या हमारा भी कर्तव्य

नहीं है कि हम भी अहिंसा धर्मके प्रचारके लिये हृदयसे प्रयत्न करें और सस्ती पुस्तकों द्वारा प्रचार करें।

यदि हम अपनेको भगवान महावीरके अनुयायी कहनेका गौरव रखते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम अहिंसा धर्मका प्रचार करें। यह प्रचार तभी हो सकता है जब कि हम वीर भगवानका पवित्र जीवन और दिव्य सन्देश घर-घरमें पहुँचा दें।

इसी उद्देश्यकी पूर्तिके ख्यालसे मैंने इस "वीर जीवन" पुस्तकको बड़े परिश्रम द्वारा लिखकर समाप्त किया। इस पुस्तकमें "महावीर चरित्र", "कल्पसूत्र", "महावीर भगवान" आदि ग्रन्थों-शास्त्रोंसे सहायता ली गई है।

अतः अब यह पुस्तक आपके सामने है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह छोटीसी पुस्तक पाठकगणका कुछ हित कर सकेगी। यदि हम शुद्ध हृदयसे वीर प्रभुके उदार एवं अखण्डनीय तत्वोंका अध्ययन करेंगे तो हमें उज्ज्वल ज्ञानकी ज्योति प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होगी।

अन्तमें मैं उन ग्रन्थकारोंको जिनसे इस पुस्तकमें सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ तथा उन सबकी आभारी हूँ।

आशा है कि इस धार्मिक पुस्तकको अपनाकर पाठकगण अपना हित कर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

लखनऊ
११-अक्टूबर १९३९ } —लज्जावती जैन।

वीर-प्रभूसे।

चीर तेरे चरणोंमें यह,
उपहार चढ़ाने आई हूँ।
भग्न हृदयके तारोंसे,
मैं तव गुण गाने आई हूँ॥
अबला नारी कहलाकर भी,
पागलसी मैं धाई हूँ।
देखो तो यह साहस मेरा,
नारि-हितार्थ अकुलाई हूँ॥
इस समाजकी ओर निहारो,
इस हित टेर लगाई हूँ।
ठुकरा कैसे सकते हो जब,
शरण तुम्हारी आई हूँ॥

—लेखिका।

प्रकाशकीय वक्तव्य ।

लखनऊ नि० श्री० ला० जगदीशप्रसादजी जैन ओवरसियरकी धर्मपत्नी श्रीमती **सौ० लज्जावतीजी जैन विशारद** एक विदुषी जैन महिला हैं। "जैन महिलादर्श" में आपके अनेक लेख छपते रहते हैं। आपने 'वीर जीवन' पुस्तक लिखकर अपनी लेखनीको सफल बनाया है।

हमें यहांपर इतना स्पष्टीकरण कर देना है कि 'वीर जीवन' पुस्तक अधिकांश श्वेतांबर जैन ग्रन्थोंके आधारसे लिखी गई है। इसलिये इसमें कई जगह श्वेतांबर मान्यताओंका दर्शन होगा। और इसीलिये इस पुस्तकके पाठक भाई बहिनोंको इसमें कुछ वैचित्र्यसा भी प्रतीत होगा।

यह पुस्तक **श्रीमान् मोदी पन्नालालजी जैन झाबुआने** अपनी **स्वर्गवासी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती शाणीबाईजीकी स्मृतिमें** "जैन महिलादर्श" के १० वें वर्षके ग्राहकोंको वितरित की है। तथा कुछ प्रतियां सगे-सम्बन्धी तथा मित्र वर्गोंमें बांटनेको प्रकाशित कराई हैं। इस उदारताके लिये हम मोदीजीके आभारी हैं। आशा है इस पुस्तकसे जनताका कल्याण होगा। तथा ऐसे शास्त्रदानका अनुकरण करनेके लिये हम समाजके श्रीमान् व श्रीमतियोंसे अपील करते हैं।

निवेदक—

कापडियाभवन-सूरत
ता० २५-१-१९४१।

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

नोट—इस पुस्तककी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं। आशा है उसका भी शीघ्र ही प्रचार होजायगा।

प्राक्-कथन।

महावीरपुराण और भगवान् वर्द्धमानके कितने ही चरित्र छप चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'वीर जीवन' का महत्व यह है कि यह एक विदुषी महिलाके धर्मानुराग और स्वतंत्र विचारका परिणाम है।

महिला-संपादित होनेके कारण यह ग्रंथ महिला समाजके लिये आकर्षक और उपयोगी होगा।

"वीर धर्ममें स्त्रियोंके अधिकार" और 'उपसंहार' शीर्षक अध्याय ध्यानसे पढ़नेयोग्य हैं।

प्रस्तुत पुस्तक कन्याशालाओं, श्राविकाश्रमों और प्रौढ़ स्त्री समाजके लिये लाभदायक होगी।

अजिताश्रम–लखनऊ
ता० १-१-४०।

—अजितप्रसाद जैन,
(एम० ए० एलएल० बी०, एडवोकेट,
चीफ कोर्ट)।

विषय-सूची।

श्रीमती सौ० लज्जावतीजी जैन-लखनऊ।

[इस पुस्तककी विदुषी लेखिका]

जैनविजय प्रेस, गांधीचौक-सूरत।

हुआ था। जैसे आप धर्मप्रेमी थी वैसे ही आपके पति भी बड़े ही धर्मप्रेमी हैं। यह जोड़ा कर्मने बड़ा ही विचार कर मिलाया था। नहीं तो धर्म अंकुर वहां ही मुर्झा जाता और पनपने नहीं पाता। आपके पतिदेव **मोदी पन्नालालजी** माणकचन्दजीके सुपुत्र हैं। जिनका जन्म विक्रम सं० १९३९ कुंवार शुक्ला ५ को झाबुवा नगरमें हुआ था। इनकी माता रसीकबाई बड़ी ही सुशीला देवी थी। अपने पुत्रका बड़ी ही योग्यताके साथ बचपन बनाया। भला जिनकी माता योग्य हो उनके पुत्र भी योग्य क्यों न हो?

आपके पिता मोदी माणकचंदजीका स्वर्गवास वि० सं० १९५३ में ही होगया था। बादमें माताने अपने पुत्रका विवाह विक्रम सं० १९५४ में बड़ी धूमधामसे शाणीबाईसे किया। पिताकी मृत्युके बाद सारा घरका प्रबन्ध आपके ऊपर आ-पड़ा। इसलिए आपने इसका बड़ी चतुराईसे प्रबन्ध किया। आपने १३ वर्षकी अवस्थासे ही व्योपार करके अपार सम्पत्ति अपने बाहुबलसे इकट्ठी की है। आप यहांके नामी मनुष्य हैं। आप सरकारी मोदी—खानेके सिवाय आप राज्यके मामलोंमें भी काफी मदद करते रहे। और अनेक उलझनें सुलझानेका प्रयत्न करते रहे। आप पर प्रजाका भी प्रेम बहुत होनेसे १८ वर्ष तक म्यू०पाल मेम्बर रहे हैं। आपने यात्राएं अपनी धर्म-पत्नि, साले, व सालीके साथ कईबार की हैं। आपको धार्मिक तीर्थोंमें भ्रमणका बड़ा ही भाव था। इस प्रान्तमें इनके बराबर तीर्थयात्रा करनेवाला शायद ही कोई भाई नजर आवेगा। आप मुनियोंके तो पूरे ही दास रहे हैं। चार चार महिनों तक घरसे दूर जाकर साधु

सेवा करते रहे हैं। मैं उम्मीद करता हूं कि आप हमेशा इसी प्रकारसे तन, मन, धनसे समाज, गुरु, व धर्मकी सेवा ज्यादा उत्साहसे करते रहकर अपना नाम अमर छोड़ जानेमें लगे रहेंगे। आपका स्वभाव बच्चों जैसा साफ है। आपसी झगड़े बढ़ने नहीं देते। इस झाबुआ नामक शहरमें तो मंदिरजी पर व आये गये साधु संतोंपर आपकी पूरी २ निगाह है। आप जबसे शिखरजीकी यात्राको सं० १९७२ से गये हैं तबसे अभीतक दो रुपया सालयाना वहां भेजनेका प्रण पूरा कर रहे हैं। स्थाई फंड इत्यादिकमें भी आपने खासी मदद की है।

यही नहीं, आपने यहांकी प्रजाके लिए पुस्तकालय सरकारसे लड़ झगड़कर वापस लिया। आप रोजाना सुबह शाम शास्त्र स्वाध्याय बराबर करते हैं। आपके जैसे धार्मिक विचार हैं वैसी ही आपको धर्मपत्नि भी मिलीं। नहीं तो आप जानते हैं कि गाड़ी विना दोनों पहियोंके चल नहीं सकती. उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम भी नहीं चल सकता है। शाणीबाई बड़ी ही शांतिप्रिय, धर्मपरायण, साधुसेवी, और तीर्थसेवी थीं. जो कुछ समय हुआ अपने पतिदेवको अकेला छोड़कर इस अवस्थामें कालके गालमें चली गईं। जो अभीतक बड़े ही प्रेमसे मिलकर गृहस्थाश्रम व धार्मिक कार्य करते रहे थे वह अब अकेलेपर छोड़ गईं। इस असार संसारमें यही शिक्षा लेनेकी है कि जब धर्मात्मा पुरुषकी यह हालत है तो दूसरोंकी क्या गिनती है, ऐसा सोचकर हर हमेशा धर्म सेवन करना चाहिए। नहीं तो "जो सोया, सो खोया" वाला हिसाब तैयार है।

शाणीबाईका जीवन सादगीका एक उदाहरण था। आप सुबह

दानसे समाज व अपना दोनोंका कल्याण किया है। सं० १९८३में बीमार होने पर ४१०१) का दान दिया।

३००१) पाठशाला कुशलगढ़में चलानेके लिए पाठशाला चालू ही है करीब छःह वर्ष हो चुके हैं।
५०१) तेरापन्थी मंदिरमें वेदीजीके लिये कुशलगढ़
१०१) जीर्णोद्धार मंदिरजी
२०१) नित्य अष्टद्रव्य चढ़ानेको मंदिरजी झाबुवामें
१०१) श्री सिद्धक्षेत्रको
९५) जीवदया इत्यादि
१०१) सागवाड़ा ग्रन्थमालामें
४१०१)

अन्य दानकी सूची।

५०१) रविव्रत उद्यापनके समय ८१ चांदीके उपकरण चढ़ाये और श्री पार्श्वनाथ पुराण बांटे
७९७) अष्टाह्निका उद्यापनमें विधवाश्रम कुन्थलगिरि इत्यादि
५०३) दशलक्षणीके व्रत उद्यापनमें चांदीके उपकरण चढ़ाये
१०१) श्री मांगीतुंगीजी पर सीढ़ियां बनानेको
२५१) श्री दि० जैन मंदिर अग्रवालोंमें श्रीजी बिराजमान किये
१२५) श्री आचार्य सुधर्मसागरजीकी नसिया बनानेको कुशलगढ़
२००) श्री „ „ का जीवनचरित्र लिखनेको
६०१) श्री पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कुशलगढ़में नये मंदिरजीमें मूर्ति बिराजमान की
१२७) आहारदानमें कुंथलगिरि व अन्य उदासीन आश्रमको

१५७) श्री सिद्धक्षेत्रोंमें अष्टद्रव्य चढ़ानेको सामग्री खाते
१०) जैनमित्र ५), जैनगजट ५)
२०१) मंदिरजीमें अष्टद्रव्य चढ़ानेको
१०) अभयदानमें काशी व आगरा
३०१) अनाथ लूले लंगड़ोंको भोजन इत्यादिके लिए
१७) पशुओंको घास वगैरह
५००१) मृत्युके कुछ ही घंटों पहले भी इस पुन्यात्मा जीवने अपनी दानकी प्रकृतिका उपयोग ५००१) देकर कर ही लिया।

इन रुपयोंके प्रबन्ध (वचन लेकर) के लिए पतिदेवसे अनुरोध करना ही जीवकी प्रकृति बतलाना है कि कहांतक सरल स्वभावी जीव संसारी जीवसे घबराता है। पतिदेवने भी अपनी पत्निका अंतिम (समय) संदेश करीब २ पूरा कर दिया है। इसप्रकार इस जीवने अपने इस भवके साथ करीब १३–१४ हजार रुपयोंका दान देकर स्त्री समाजके लिए उदाहरण छोड़ा है। इन बाईके प्रयत्नहीसे कुशलगढ़ सरीखे छोटेसे गांवमें दिगम्बर समाजके लिए एक पाठशाला विद्यादानके लिए मोदी मानकचंदजी पन्नालालके नामकी खोली गई है, जिसमें आसपासके लोग लाभ उठाकर अपना भव सार्थक बना सकें।

देखिये, संसारमें गृहस्थ अवस्थामें नाना प्रकारके झंझटोंमें फसा रहनेपर भी इस जीवने अपने उत्तम विचार रखनेसे ही अंत समयमें मृत्यु ज्ञान पाकर अपना और समाजका भला किया। कुटिल कुकाली स्वभाववाले ऐसा लाभ नहीं लेसकते हैं।

भरे पूरे पुत्र, पुत्रवधू, पति इत्यादिकको छोड़कर यह जीव इस असार संसारसे विदा होगया। देखिये पवित्र और उत्तम भाव रखनेसे

इस शाणीबाईके जीवको मृत्युज्ञान पहिलेसे होगया। ऐसा तो मुनियोंको भी दुर्लभ होता है। दोपहरको अपने सुपुत्र चंपालालजीको कार्यवश बाहर भेजती हैं। और रात्रिको हंसीमें ही पतिदेवसे रु० ५०००१) के दानका वचन लेकर बादमें प्रसन्न मुखसे कहती हैं कि आपका और मेरा अब इस भवका सम्बन्ध पूरा होना चाहता है। पतिदेव कातर होते हैं, तब फिर कहती हैं "जीव" मैं तो सुबह यहांसे जाऊंगी, अभी नहीं। पतिदेव मजाक समझते हैं, मगर उधर यमराज रूपी कालदेव मुंह लंबाये हुए तैयार बैठा था।

सुबह होते ही यह पवित्र आत्मा अपने कुटुंबियोंको रोते बिलखते कलपते छोड़ कर स्वर्ग सिधारता है। वह भी कैसे "अरहन्तजी, सिद्धजी, मैं तुम्हारी शरणमें होऊं" इस इस जीवने ता० १-१२-३०, को पति, पुत्र, पुत्रवधू इत्यादिकसे इस असार संसारका नाता तोड़कर अपना मार्ग लिया। सच है धर्मात्मा स्वपनेमें भी झूठ नहीं बोलते हैं।

अंतमें बहिनोंसे प्रार्थना करता हूं कि इस जीवनसे जो कुछ भी लाभ उठा सकें, उठानेका प्रयत्न करें।

रोते बिलखते कुटुंबियोंको और मृत आत्माको शांति प्रदान करें।

श्रीमती सौ० शाणीबाईजीकी स्मृतिमें १०००१) के दानसे दाहोदमें श्रीमती सौ० शाणीबाई दिगम्बर जैन बोर्डिंग खोला जाचुका है। तथा यह "वीरजीवन" ग्रन्थ 'जैन महिलादर्श'के १०वें वर्षके ग्राहकोंको भेट बांटनेके लिये प्रकाशित कराया गया है।

आपका हितैषी—

हीरालाल जैन विशारद—कुशलगढ़।

श्री १००८ भगवान महावीर ।

श्रीमहावीराय नमः ।

वीर जीवन ।

मङ्गलाचरण ।

मंगलमय मंगल करण, वीतराग विज्ञान ।
नमो ताहि जाते भये, अरहंत आदि महान ॥

भव्यजीवरूपी कमलोंके विकास करनेवाले, महावीर भगवानकी मैं (ग्रन्थकार) वन्दना करती हूँ, जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठों कर्मोंका नाश कर मोक्षपद प्राप्त किया है ।

उपर्युक्त आठों कर्मोंके नाश करनेवाले ऋषभ, अजित आदि तेईस तीर्थंकरोंको भी मैं नमस्कार करती हूँ, जिन्होंने अपने अमृतरूपी सदुपदेश द्वारा जनताका उद्धार किया है ।

छत्तीस गुण धारक, निर्दोष चारित्रके पालन करनेवाले निरन्तर स्व-पर-हित-परायण, आचार्योंको उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ।

वीर जीवन।

मैं उपाध्यायोंकी शास्त्रीय ज्ञानकी प्राप्तिके लिये स्तुति करती हूँ, जो स्वयं शास्त्र समुद्रके पारगामी हैं और अपने शिष्यवर्गको निरन्तर शास्त्रोंका अध्ययन कराते हैं।

साधुवृत्ति प्राप्ति अर्थ मैं साधुओंका स्तवन करती हूँ, जो अट्ठाईस मूलगुणोंके धारक हैं, तथा जो निरन्तर आत्मध्यानमें लीन रहते हैं।

द्वादशांग वाणीकी रचना करनेवाले वृषभसेनसे आदि लेकर गौतम पर्यंत समस्त गणधरोंको मैं नमस्कार करती हूँ।

ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पञ्चपरमेष्ठी आदिको नमस्कार कर अब मैं उस आश्चर्यमय वीर प्रभुके जीवनचरित्रका प्रारम्भ करती हूँ, जिसके द्वारा रागद्वेष, फूट आदिका नाश होकर एकताका साम्राज्य स्थापित होगा।

जैनधर्मकी प्राचीनता।

जैन शास्त्रानुसार जैनधर्म अनादि माना गया है। क्योंकि महावीर भगवानके पूर्व २३ तीर्थंकर और भी हुए हैं। जिन्होंने इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर संसारके संरक्षणार्थ, सत्यधर्मका प्रचार कर निर्वाणका मार्ग बताया था। चौवीस तीर्थंकरोंमें सर्व प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव (आदिनाथ) थे। जैन ग्रन्थानुसार वे करोड़ों वर्ष जीवित रहे। इनके पश्चात् २२ तीर्थङ्कर हुए। २४ वें तीर्थङ्कर वर्द्धमान थे।

बहुतसे लोगोंका ख्याल है कि वीर प्रभु ही जैनधर्मके मूल संस्थापक हुए थे। किन्तु इस बातके माननेमें भूल है। किसी भी दिगंबरी श्वेताम्बरी अथवा बौद्ध ग्रन्थमें यह लिखा हुआ नहीं पाया जाता कि वीर प्रभु किसी विशेष धर्मके संस्थापक थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म प्राचीन है और वीर प्रभुके पहिलेसे किसी न किसी अवस्थामें वर्तमान था। यह बात अवश्य है कि उनसे पूर्व यह बहुत विकृत अवस्थामें वर्तमान था। जिसको वीर प्रभुने संशोधन कर उन्नति की। विद्वानोंने बहुत छान-बीनके साथ सिद्ध किया है कि २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथसे पूर्व तीर्थंकरोंका इतिहासमें कहीं भी वर्णन नहीं पाया जाता। हां, पार्श्वनाथ ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इनका काल वीर प्रभुके निर्वाणसे २५० वर्ष पूर्वका है। बल्कि डाक्टर जेकोबीका कथन है कि जैनधर्मके मूल संस्थापक श्री पार्श्वनाथ ही

हैं। श्री पार्श्वनाथकी जीवन घटनाओं एवं उपदेशका विवेचन इतिहासमें कहीं२ पर पाया गया है।

"भद्रबाहुस्वामी" रचित कल्पसूत्रमें कई तीर्थंकरोंकी जीवनियां दी गई हैं, उसमें पार्श्वनाथकी जीवनी भी वर्तमान है। प्रभु पार्श्वनाथ काशीके राजा अश्वसेनके पुत्र थे। इनकी माताका नाम वामादेवी था। तीस वर्ष पर्यन्त गार्हस्थ्य सुख भोगकर इन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली थी। ये ८३ दिन कम सत्तर वर्ष तपस्या कर निर्वाणस्थ हुए। श्वेतांबरी मान्यतानुसार इनके समयमें अणुव्रतोंकी संख्या केवल चार थी। १—अहिंसा २—सत्य ३—अचौर्य्य ४—परिग्रह परिमाण। परन्तु समयकी स्थितिको ध्यानमें रखकर वीर प्रभुने इसमें "ब्रह्मचर्य" की संख्या और बढ़ा दी थी! इसके सिवाय पार्श्वनाथने अपने अनुयायियोंको एक अधोवस्त्र पहननेकी आज्ञा दी थी, किन्तु वीर प्रभुने बिलकुल नग्न रहनेकी शिक्षा दी थी। कुछ भी हो किन्तु उपरोक्त कथनसे यह बात सिद्ध होती है कि जैन धर्म प्राचीन था और महावीर प्रभु उसके मूल संस्थापक नहीं, केवल संशोधक थे। यहांपर यह निर्णय करना बड़ा ही कठिन है कि जैनधर्म कबसे प्रचलित हुआ है। और इसके मूल संस्थापक कौन थे। क्योंकि जैन शास्त्रोंमें पार्श्वनाथके पूर्व २२ तीर्थंकर हुए हैं और उन तीर्थंकरोंके पूर्व कई चौबीसियाँ होचुकी थीं। सम्भव है यदि और छान-बीन कीजाय तो इसका निर्णय होजाय। किन्तु इसकी शीघ्र ही आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि हमारे पास अभीतक ऐसे साधन पर्याप्त नहीं हैं, जिनसे मालूम होजाय कि जैनधर्म कब प्रचलित हुआ

था और किसने यह प्रचलित किया था। ऐतिहासिक दृष्टिसे भ० पार्श्वनाथका समय ईसासे पूर्व आठवीं शताब्दीमें निश्चय होता है।

सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेवका वृत्तान्त जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त मार्कण्डेयपुराण, ऋग्वेद, विष्णुपुराण, भागवत, आग्नेयपुराण आदिमें भी पाया जाता है। बौद्धाचार्य आर्यदेवने उनका जैनधर्मके संस्थापक एवं बौद्धधर्मके नैयायिक धर्मकीर्तिने सर्वज्ञके रूपमें उनका उल्लेख किया है।

आदिनाथ प्रभुको हिन्दूशास्त्र अपना आठवां अवतार मानते हैं। तथा उन्हींके भरत पुत्रके नामसे यह देश भारतदेश कहा जाता है।

प्राचीन शिलालेख आदिसे भी भगवान ऋषभदेवकी पूज्यता सिद्ध होती है। मथुरामें प्रथम शताब्दीके और उसके पूर्वके लेख मिले हैं उनसे जैनधर्मकी प्राचीनताका प्रमाण मिलता है। इसी भांति उड़ीसा प्रांतके अन्तर्गत खंडगिरी, उदयगिरीकी गुफाओंमें ईसासे १५० वर्ष पूर्वके जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनमें ऋषभदेवकी मूर्तिको पटना लेजानेका उल्लेख है।

बड़वानीमें आदिनाथ प्रभुकी ५५ हाथ ऊंची प्राचीन मूर्ति आज भी उनकी गुण गरिमा प्रदर्शित कर रही है।

आदिनाथ प्रभुके पुत्र बाहुबलिकी ५८ फुट ऊंची विशाल प्रतिमा "श्रवणबेलगुल" (मैसूर राज्य) में वर्तमान है। सुना जाता है कि यह मूर्ति रामचन्द्रजीके समयकी है और सन ९८१ ई० में राज्यके मंत्री तथा सेनापति चामुण्डरायने आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त-

चक्रवर्तीके आदेशानुसार प्रतिमाका पुनरुद्धार करवाया था। इससे भी जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

अवसर्पिणी कालमें भगवान् ऋषभदेवने ही भारतमें आर्य सभ्यताकी स्थापना की थी। एवं संसार-सागरमें भ्रमण करते हुये अनेक कष्ट-समूहको सहते हुए जनसमुदायने उनके सदुपदेश अमृतके पान द्वारा मुक्तिको प्राप्त किया, तथा संसारके प्राणियोंको अभयदान देनेके कारण जीवोंके पितामह एवं धर्मके आदि प्रवर्तक (आदि ब्रह्मा) कहलाये।

उपरोक्त विवेचनसे ऋषभदेव ही जैनधर्मके मूल संस्थापक सिद्ध होते हैं। जैनधर्म भारतका आदि धर्म है। किसी समयमें जैन धर्मकी महानता थी, जैनियोंका प्रारब्ध था, जैन धर्मके तीर्थंकरोंकी सर्वत्र मान्यता थी। किन्तु जब वैदिक धर्मका प्राबल्य हुआ और पुराणादिकी रचना हुई तो जिस भांति बौद्धधर्मके वैदिक धर्मसे पृथक् होने पर भी उसके बढ़ते हुए प्रचारको देखकर महात्मा बुद्धको हिन्दुओंने अन्तमें उनका अवतार घोषित करके मान्यता कम कर दी थी, इसी प्रकार जैनधर्मके संस्थापक तथा भारतमें सभ्यताके आदि प्रवर्तक ऋषभदेवको भी अपना आठवां अवतार सिद्ध कर सर्वसाधारण जनताके सन्मुख हिन्दू धर्म वेदको प्राचीन बताकर तथा जैनधर्मको वैदिक धर्मकी शाखा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है। यह अन्य मतावलम्बियोंकी ज्यादती है।

श्री ऋषभदेव जैनधर्मके मूल संस्थापक थे। अतः उनकी मान्यता एवं प्रचारके कारण अनेकों ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख पाया जाता

है। किन्तु समयकी अधिक प्राचीनताके कारण अनेक तीर्थंकरोंका वृत्तान्त जैन शास्त्रोंके अतिरिक्त इतिहास आदिमें अन्यत्र नहीं मिलता।

२२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ श्रीकृष्णचन्द्रजीके चचेरे भाई थे। जिनका वर्णन यजुर्वेद अध्याय ९, मंत्र २५ में पाया जाता है।

२० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथजीके समयमें भगवान रामचन्द्रजी हुए थे। योगवशिष्ठमें लिखा है कि:—

नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु न च मे मनः।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि ह्यात्मन्येव जिनो यथा॥

अर्थात्—रामचन्द्रजी कहते हैं कि मुझे अन्य किसी प्रकारकी वाञ्छा नहीं। मैं तो केवल आत्मामें जिनेन्द्र भगवानके समान शांति चाहता हूं। अतः जैनधर्मकी उपरोक्त विवेचनसे प्राचीनता प्रकट होती है।

उस समयकी सामाजिक अवस्था।

लगभग ढाई हजार वर्ष व्यतीत हुये होंगे, जब भारतीय जनताके अंतर्गत एक भयानक विशृंखला उत्पन्न होरही थी। वे सर्व सामाजिक नियम जो समाजको उन्नत बनाये रखनेके लिये प्राचीन ऋषियोंने आविष्कृत किये थे नष्ट भ्रष्ट होगये थे। ब्राह्मण अपना ब्राह्मणत्व भूलकर स्वार्थके वशीभूत होकर अपनी सत्ताओंका दुरुपयोग करने लग गये थे। क्षत्रियलोग ब्राह्मणोंके हाथकी कठपुतली बन अपने कर्तव्यसे च्युत होगये थे। समाजका राजदण्ड अत्याचारके हाथमें जापड़ा था। सत्ता अहंकारकी गुलाम होगई थी। इन कारणोंसे चारों ओर समाजमें त्राहि २ मच गई थी।

भारतवर्षके सामाजिक और धार्मिक इतिहासमें यह काल बड़ा ही भीषण था। यह वह समय था जब मनुष्य अपने मनुष्यत्वको भूल गये थे। सत्ताधारी दुर्बलोंपर मनमाना अत्याचार करते थे। और बिचारे निर्बल पीसे जारहे थे। और वे व्यक्ति जिनपर समाजकी पवित्र सेवाका भार था, ऊहापोहमें फंसे हुये परेशान थे। समाजके अंतर्गत अत्याचारकी भट्टी धधक रही थी। धर्मपर स्वार्थका राज्य था, कर्त्तव्य सत्ताका दास था, मनुष्यत्व अत्याचारपर बलिदान करदिया गया था। समस्त समाजमें जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। तात्पर्य यह कि ब्राह्मणोंके अत्याचारोंसे सर्व भारत क्षुब्ध हो उठा था।

उस समय धार्मिक अवस्थाका बहुत ही भयंकर रूप था। पशु-यज्ञ और बलिदान उस समय अपनी सीमापर पहुंच गये थे। प्रति दिन हजारों निरपराध पशुओंको तलवारके घाट उतार दिया जाता था। ब्राह्मण, दीन, मूक और निरपराध पशुओंके रक्तसे यज्ञकी वेदी लालकर अपने नीच स्वार्थकी पूर्ति करते थे। जो व्यक्ति अपने यज्ञमें जितने अधिक यज्ञ करता था वह उतना ही अधिक पुण्यवान समझा जाता था। जो ब्राह्मण किसी समय दयाके अवतार थे, वे ही इस समयमें पाशविकताकी प्रचण्ड मूर्तिकी भांति छुरा लेकर मूक पशुओंका वध करनेको तत्पर रहते थे। विधान बनाना तो इनके हाथमें था ही। जिस कार्यमें ये अपनी स्वार्थसिद्धिको पूर्ण होते देखते थे, उसीको विधानरूप बना डालते थे। ऐसा जान पड़ता है कि—" वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति " आदि विधान उसी समयमें उन्होंने अपनी दुष्टवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये बना लिये थे।

समस्त समाजके अन्दर कर्मकांडका सार्वभौमिक राज्य होगया था। समाज धर्मको भूलकर बाह्याडम्बरमें फँस चुका था। सर्व जन-समुदायकी आत्मा घोर अन्धकारमें पड़ी हुई प्रकाशार्थ आकुल होरही थी। किन्तु उनकी इस चिल्लाहट एवं आकुलताको कोई सुननेवाला न था। इस विनाशकारी यज्ञ प्रथाका प्रभाव समाजपर अधिकताका रूप धारण करता जारहा था और यज्ञोंमें पशु वधका दृश्य देख २ कर मनुष्योंके हृदय अत्यन्त क्रूर और निर्दयी होगये थे। उनके हृदयसे दया, कोमलता एवं मनुष्यता नष्ट होगई थी। वे आत्मिक जीवनको भूल गये थे। और समाज अध्यात्मिकताको छोड़कर भौतिकताका

उपासक होगया था। उस कालमें केवल यज्ञ करना और कराना ही मुक्तिका मार्ग समझा जाता था। वास्तविकतासे लोग बहुत परे चले गये थे और उनमें यह विश्वास दृढ़तासे फैल चुका था कि यज्ञकी अग्निमें पशुओंके मांसके साथ २ हमारे दुष्कर्म भी भस्म होजाते हैं। ऐसी अप्रमाणिक स्थितिके मध्य वास्तविकताका गौरव समाजमें कैसे रह सकता था : इसके अतिरिक्त यज्ञोंमें बहुतसा द्रव्य व्यय होता था। जिस यज्ञमें ब्राह्मणोंको इच्छापर दक्षिणाएँ न दीजाती थीं वह यज्ञ अपूर्ण समझा जाता था। अतः ब्राह्मणोंको बड़ी २ दक्षिणाएं दीजाती थीं। इनमें कुछ यज्ञ तो ऐसे होते थे, जिनमें एक एक वर्ष लग जाता था और हजारों ब्राह्मणोंकी आवश्यक्ता पड़ती थी।

अतः जो व्यक्ति संपत्तिशाली होते थे वे तो यज्ञ आदि कर्मोंके द्वारा अपने पापोंका नाश कर लेते थे, किन्तु साधारण-स्थिति एवं निर्धन मनुष्योंके लिये यह मार्ग सुगम न था। उन्हें ब्राह्मण लोग किसी प्रकार भी मुक्तिका रास्ता नहीं देते थे। इसलिये साधारण स्थितिके लोगोंने आत्मोन्नतिके अर्थ दूसरे उपायों द्वारा मार्ग निकालना चाहा। जिन उपायोंमेंसे एक उपाय हठयोग भी था। उस समय मनुष्योंकी यह धारणा होगई थी कि कठिनसे कठिन तपस्या द्वारा ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त की जा सक्ती है। आत्मिक उन्नति प्राप्त करने एवं प्रकृति पर विजय पानेके निमित्त मनुष्य अपनी कायाको अनेक प्रकारकी तपस्या द्वारा कष्ट देते थे। पञ्चाग्नि तपना, एक पैरपर खड़े रहकर एक हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करना, महिनों पर्यंत कठिनसे कठिन उपवास आदि करना। इसी भांति अन्य कई प्रकारकी तपस्याएँ भी इन्द्रियों

पर विजय प्राप्त करनेके लिये आवश्यक समझी जाती थीं।

इन तपस्याओंके करते करते लोगोंका अभ्यास इतना बढ़ गया था कि उन्हें कठिनसे कठिन यन्त्रणा भुगतनेमें भी कष्ट न होता था। जनताका यह विश्वास दृढ़ होगया था कि यदि यह तपस्या पूर्णरूपेण होजाय तो मनुष्य विश्वका सम्राट् हो सकता है।

समाजमें यज्ञवादियों और हठयोगवादियोंके अतिरिक्त कुछ अंश ऐसा भी था, जिसे इन दोनों ही मार्गोंसे शान्ति न मिलती थी। वे लोग सच्ची धार्मिक उन्नतिके उपासक थे। या उनको समाजका यह कृत्रिम जीवन बहुत कष्ट देता था। ये लोग समाजसे और घर-गृहस्थीसे विरक्त हो सत्यकी खोजमें जंगलों २ भटकते फिरते थे। भगवान् महावीरके पहिले और उनके समयमें ऐसे बहुतसे परिव्राजक, संन्यासी और साधु एक स्थानसे दूसरे स्थान पर विचरण करते थे। समाजकी प्रचलित संस्थाओंसे उनका कोई संबंध न था। बल्कि वे लोग तत्-कालीन प्रचलित धर्म और प्रणालीका पूर्णतया विरोध करते थे। सर्वसाधारणके हृदयोंमें वे प्रचलित धर्मके प्रति अविश्वासका बीजारोपण करते थे। इन संन्यासियोंने समाजके अन्दर बहुतसा उत्तम विचारोंका क्षेत्र तैयार कर दिया था।

इसके अतिरिक्त भगवान् महावीरके पूर्व उपनिषदोंका भी प्रादु-र्भाव होचुका था। इन उपनिषदोंमें कर्मके ऊपर ज्ञानकी प्रधानता दिखलाई गई थी, उनमें ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश और मोहसे निवृत्ति बतलाई गई थी। इन उपनिषदोंमें पुनर्जन्मका अनुभव, जीवके सुख-दुःखका कारण परमाणुकी सत्ता, आत्मा और परमात्मामें सम्बन्ध

आदि कई गम्भीर प्रश्नोंपर विचार किया है। शनै शनैः इन उपनिषदोंका अनुकरण करनेवालोंकी संख्या बढ़ने लगी। इनके अध्ययनसे लोगोंने और कई तत्वज्ञान निकाले। किसीने इन उपनिषदोंसे अद्वैतवादका आविष्कार किया, किसीने विशिष्टाद्वैतका और किसीने द्वैतवादका। किन्तु उस समय समाजमें ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या बहुत कम थी और समाजमें इनकी प्रधानता भी विशेष न थी। तात्पर्य यह है कि भगवान् महावीरके पूर्व भारतमें कई मत—मतान्तर प्रचलित थे, पर प्रधानतया उपरोक्त तीन विचार-प्रवाह प्रचलित होरहे थे। इसके सिवाय टोने, टुटके, जादू, भूत, चुड़ैल, आदि मत—मतान्तर प्रचलित थे। परन्तु मनुष्योंका हृदय जिस प्रश्नका उत्तर चाहता था, जिस शङ्काका वह समाधान चाहता था, जिस दुःखकी निवृत्तिका वह मार्ग चाहता था वह उपरोक्त किसी भी मतसे प्राप्त न होता था।

याज्ञिक कहते थे कि देवताओंका कोप संसारकी अशांतिका प्रधान कारण है। इस अशांतिको मिटानेके लिये उन्होंने देवताओंको प्रसन्न करना आवश्यक बतलाया और इसके लिये पशु—यज्ञकी योजना की। हठयोगवादियोंने इस दुःखका कारण तपस्याका अभाव बतलाया। उन्होंने कहा कि तपस्याके द्वारा मनुष्य अपने शरीर और इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त कर सक्ता है और इनका अधिकार होते ही अशांति एवं कष्टोंसे छुटकारा मिल जाता है। ज्ञान—मार्गका अनुकरण करनेवालोंका कहना था कि दुःखका कारण अज्ञान ही है, और ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाशकर मनुष्य सच्ची शांति प्राप्त कर सकता है।

किंतु इन सब समाधानोंसे जनताके हृदयको शांति प्राप्त न

होती थी। जिस भयंकर ऊहापोहमें समाज पड़ रहा था उसका समाधान करनेके लिये ये उत्तर बिलकुल निरर्थक थे। उस समय समाजको सबसे अधिक जरूरत थी सहानुभूति, प्रेम और दयाकी। क्योंकि कृतघ्नता, मोह एवं अत्याचारकी भीषण ज्वाला उसको तीव्रतासे दग्ध कर रही थी। ऐसी दुखद एवं भयंकर परिस्थितिमें जनसमुदाय एक ऐसे महापुरुषकी प्रतीक्षा कर रहा था, जो समस्त समाज और देशके अन्दर शांति, प्रेम एवं सहानुभूतिका स्रोत बहा दे। ठीक, ऐसी भयंकर परिस्थितिमें देश और समाजके सौभाग्यसे भगवान महावीर यहां पर अवतीर्ण हुये। परिस्थितिका पूर्ण अध्ययन करलेनेके उपरांत उन्होंने भारतवर्ष एवं समस्त संसारको दिव्य संदेशा दिया। उन्होंने बतलाया कि यज्ञों और मन्त्रों द्वारा कभी शांति नहीं प्राप्त हो सक्ती। इसी भांति हठयोग आदि कुतपस्यायें भी व्यर्थ हैं। उन्होंने बतलाया कि यज्ञ, कर्मकांड और कुतपस्याओंकी अपेक्षा शुद्ध अन्तःकरणका होना परम आवश्यक है। उन्होंने साधारण जनताको अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण इन पांच व्रतोंका उपदेश दिया। उनकी दृष्टिमें ऊंच, नीच, ब्राह्मण, शूद्र, अमीर, गरीब सब ही बराबर थे। उनका निर्वाण मार्ग सबके लिये खुला था।

ऐसे समयमें इन्होंने अवतीर्ण होकर संसारकी त्राहि त्राहिको मिटाकर देश और समाजमें शांतिकी सरिता लहरादी। तड़फते हुये जनसमुदायोंके हृदयमें नवजीवनका संचार किया। इनके उपदेशामृतसे अकर्मण्य और आलसी कर्मयोगी बन गये। अत्याचारी दयालु होगये। विशृंखलयुक्त समाज सुशृंखलाबद्ध होगया।

महावीर प्रभूके पूर्वभव और गर्भ।

जैन पुराणोंमें भगवान महावीरके कई भवोंका वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। यहांपर भी भाई-बहिनोंकी जानकारीके लिये इन भवोंका संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है। इसलिये कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है।

इस जम्बूद्वीपमें पश्चिम विदेह क्षेत्रमें आभूषणकी भांति "जयन्ती" नामक एक नगरी है। उस नगरीमें उस समय "शत्रुमर्दन" नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था। उसके राज्यके अन्दर "पृथ्वी प्रतिष्ठात" नामक एक गांव था। उसमें "नयसार" नामका एक स्वामि भक्त ग्रामचिन्तक रहता था। यद्यपि वह साधुओंके संसर्गसे रहित था, तथापि पापोंसे पराङ्मुख और दूसरोंके छिद्रान्वेषणसे विमुख था। एकवार वह राजाकी आज्ञासे लकड़ी काटने जंगलमें गया, लकड़ी काटते काटते उसे मध्याह्न होगया। भोजनका समय हो जानेसे 'नयसार' के नौकर उसके लिये भोजन सामग्री लेकर वहां आये। यद्यपि वह बहुत भूखा था, किन्तु फिर उसकी इच्छा पहिले किसी अतिथिको भोजन कराकर बादमें स्वयं करनेकी थी। उसी समय कुछ मुनि जो कि थकावट और पसीनेसे क्लांत होरहे थे, उधर पधारे। उनको देखते ही वह अत्यंत हर्षित हुआ। उनको आदर सहित नमस्कार कर उसने निवेदन किया—

"भगवन्! इस भयंकर जगतमें जहां अच्छे २ शस्त्रधारी भी आनेसे भय खाते हैं आप कैसे आनिकले"? मुनियोंने उत्तर दिया

कि एक मनुष्य हमारे साथ था, वह हमें छोड़कर चलागया और हम मार्ग भूलकर इधर आनिकले। नयसारने मन ही मन उस मनुष्यकी अत्यंत भर्त्सना की और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मुनियोंको भोजन कराकर उन्हें मार्ग बताया। उसी दिनसे उसने अपने जीवनको भी धर्ममें प्रवृत्त करदिया। अन्तमें शुद्ध भावनाओं सहित मृत्यु प्राप्तकर वह सौधर्म स्वर्गमें देवता हुआ।

इसी भरतक्षेत्रमें "विनीता" नामक एक श्रेष्ठ नगरी थी। उस समय उसमें श्री ऋषभनाथके पुत्र भरतचक्रवर्ती राजा राज्य करते थे। उन्हींके घरपर उपरोक्त ग्रामचिन्तक "नयसार" के जीवने जन्म ग्रहण किया। इसका नाम मरीचि रक्खा गया। एकवार अपने पिता भरत-चक्रवर्तीके साथ मरीचि भगवान् ऋषभदेवके प्रथम समवशरणमें उपदेश सुननेके लिये गया। ऋषभदेवके उपदेशको सुनकर उसने उसी समय दीक्षा ग्रहण करली और तदनन्तर वह भगवान् ऋषभदेवके साथ ही साथ भ्रमण करने लगा। इसप्रकार बहुत समय तक ये विहार करते रहे।

एकवार भयंकर ग्रीष्मऋतुका आगमन हुआ, पृथ्वी अग्निकी भांति तपने लगी। सूर्यकी तीव्र किरणें पृथ्वीपर पड़ने लगीं। ऐसे अवसरमें मरीचि मुनि भयंकर तृषासे पीड़ित हुये और घबराकर चारित्र मोह कर्मके उदयसे इसप्रकार सोचने लगे कि सुमेरु पर्वतकी भांति इस साधुवृत्तिका भार सहन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूं। किंतु अब इस वृत्तिको किस भांति छोड़ूं जिससे लोकनिंदा न हो। सर्वोत्तम यही है कि इस वृत्तिको छोड़कर मैं त्रिदण्डी सन्यासको धारण करलूं।

इसप्रकार कष्टसे कायर होकर मरीचिने उस वृत्तिको छोड़कर त्रिदण्डी सन्यासको ग्रहण किया।

एक समय भगवान् ऋषभदेव भ्रमण करते २ पुनः 'विनीता' नगरीके समीप आये। भरतचक्रवर्ती उनके दर्शनार्थ आये। समवशरण सभामें भरतचक्रवर्तीने पूछा—

भगवन्! इस सभामें कोई ऐसा भी व्यक्ति हैं अथवा नहीं जो भविष्यकी इसी चौवीसीमें तीर्थंकर होनेवाला हो? इस प्रश्नके उत्तरमें ऋषभदेवने मरीचिकी ओर संकेतकर कहा कि यह तेरा पुत्र मरीचि इसी भरतक्षेत्रमें "वीर" नामक अन्तिम तीर्थंकर होगा। इसके पहले यही पोतनपुरमें "त्रिपृष्ट" नामक प्रथम वासुदेव और विदेहक्षेत्रकी मूकापुरी नामकी नगरीमें "प्रियमित्र" नामका चक्रवर्ती होगा।

इस बातको सुनकर मरीचि हर्षोन्मत्त होकर नाचने लगा और उच्च स्वरमें कहने लगा कि पोतनपुरमें मैं पहला वासुदेव होऊँगा, मूकानगरीमें चक्रवर्ती होऊँगा और अन्तमें तीर्थंकर होऊँगा। अतः अब मुझे और किस बातकी आवश्यक्ता है। मैं वासुदेवोंमें प्रथम, मेरा पिता चक्रवर्तियोंमें पहिला, और मेरा दादा तीर्थंकरोंमें पहिला। अहा हमारा कुल भी कितना उत्तम है!

श्री ऋषभदेवजीका निर्वाण हुये पश्चात् मरीचि संसारी मनुष्योंको उपदेश दे देकर उच्च-चरित्र साधुओंके पास भेजता था। एकबार वह बीमार हुआ। जब उसकी परिचर्या करनेके निमित्त कोई उसके पास न आया तो उसे बड़ी ग्लानि हुई और स्वस्थ होनेपर उसने अपना एक शिष्य बनानेका विचार किया। दैवयोगसे आरोग्य होनेपर उसे

"कपिल नामक" कुलीन व्यक्ति मिला और उसने उसको जैनधर्मका दिव्य उपदेश दिया। उस समय कपिलने उससे पूछा कि आप स्वयं इस धर्मका पालन क्यों नहीं करते? मरीचिने उत्तर दिया—मैं इस धर्मका पालन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। कपिलने कहा—तब क्या आपके मार्गमें धर्म नहीं है? यह प्रश्न सुनते ही उसे प्रमादी जान अपना शिष्य बनानेकी इच्छासे मरीचिने उत्तर दिया कि "धर्म तो उस मार्गमें भी है, और इस मार्गमें भी है।" इसपर कपिल उसका शिष्य होगया। जैन पुराणोंका कथन है कि इस अवसर पर मिथ्या धर्मोपदेश देनेके कारण "मरीचि" ने कोटा—कोटि सागरोपम प्रमाण संसारका उपार्जन किया और उस पापकी विना कुछ आलोचना किये ही अनशनके द्वारा उसने देहत्याग की तथा ब्रह्मदेव लोकमें देवता हुआ।

ब्रह्मदेव लोकसे चयकर मरीचिका जीव "कौल्लाक" नामक ग्राममें कौशिक नामक ब्राह्मण हुआ। विषयमें अत्यंत आसक्त, द्रव्योपार्जनमें तत्पर और हिंसा करनेमें अत्यंत क्रूर उस ब्राह्मणने बहुत कालनिर्गमन किया। और अन्तमें त्रिदण्डीमें मृत्यु प्राप्त कर वह कई भवोंमें भ्रमण करता हुआ वह "स्थूणां" नामक स्थानमें 'मित्र' नामक ब्राह्मण हुआ। वहां भी त्रिदण्डीमें मृत्यु प्राप्तकर वह सौधर्म देवलोकमें मध्यमश्रेणीका देव हुआ और वहांसे चयकर "अग्निद्योत" नामक ब्राह्मण हुआ। इसवार भी वह पूर्वकी भांति "त्रिदण्डी" हुआ।

उस योनिसे मृत्यु पाकर वह ईशान स्वर्गमें देवता हुआ। वहांसे चयकर मंदिर नामक संन्निवेशमें "अग्निमूर्ति" नामक ब्राह्मण हुआ। उस

भवमें भी "त्रिदण्डी" ग्रहणकर बहुतसी आयुका उपभोग किया और अन्तमें मृत्यु प्राप्तकर सनत्कुमार देवलोकमें मध्यम आयुवाला देव हुआ। वहांसे चयकर श्वेतांबरी नगरीमें भारद्वाज नामक विप्र हुआ। उस भवमें त्रिदण्डी होकर बहुतसी आयुका उपभोग करनेके उपरांत मृत्यु प्राप्तकर माहेन्द्रकल्पमें मध्यम आयुवाला देव हुआ। वहांसे चयकर राजग्रहीमें वह "स्थावर" नामक ब्राह्मण हुआ। वहांसे मृत्यु प्राप्तकर वह ब्रह्मदेवलोकमें मध्यम आयुवाला देव हुआ।

राज्यगृही नगरीमें "विश्वनन्दी" नामक राजा राज करता था। उसकी "प्रियंग" नामकी स्त्रीसे "विशाखनंदी" नामक एक पुत्र हुआ। उस राजाके "विशाखभूति" नामका एक भाई भी था जिसकी "धारिणी" नामकी स्त्री थी। मरीचिका जीव पूर्वभवमें उपार्जित किये हुये शुभ कर्मोके उदयसे "धारिणी"के गर्भमें आया। जन्म होनेपर इसका नाम "विश्वभूति" रक्खा गया। बाल्पनेसे बढ़ते २ विश्वभूतिने यौवन अवस्थामें पदार्पण किया। एकसमय नन्दनवनमें इन्द्रके समान विश्वभूति अपने अन्तःपुर सहित "पुष्पकरण्डक" नामके उद्यानमें क्रीडा कर रहा था। इतनेहीमें राजपुत्र विशाखनंदी भी क्रीड़ा करनेकी इच्छासे वहां आया। किंतु अन्दर विश्वभूतिको देखकर वह बाहर ही ठहर गया। इतनेमें "प्रियंग" रानीकी दासियां फूल लेनेकी इच्छासे वहां आई और उन दोनोंमेंसे एकको बाहर एवं दूसरेको अन्दर देखकर वे वापिस लौट गई एवं रानीसे समस्त वृतांत कह सुनाया। अपने पुत्रके इस अपमानसे रानी बड़ी क्षुब्ध हुई, एवं तत्काल कोपभवनमें चली गई।

जब यह समाचार राजाको ज्ञात हुआ तो रानीकी इच्छापूर्तिके निमित्त उसने एक कपटजाल रचा, तथा यात्राकी तैयारी करवाई। उसने राजसभामें जाकर कहा—हमारा "पुरुषसिंह" नामक सामन्त बलवाई हो गया है। अतः उसे दबानेके लिये मैं प्रस्थान करता हूं। यह संवाद सुनकर सरल स्वभाव विश्वभूति उद्यानसे घर आये और राजासे उस कार्यका भार स्वयं लेकर सेना सहित प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर उसने पुरुषसिंहको बिलकुल अनुकूल पाया, जिससे वह लौटकर वापिस आया। जब मार्गमें वह पुष्पकरंडक वनके पास आया, तो वहांके द्वार-पालसे उसे ज्ञात हुआ कि अन्दर विशाखनन्दी कुमार हैं। यह सुनकर उसने विचारा कि मुझे कपटपूर्वक पुष्पकरंडक उद्यानमेंसे निकाला है। तदनन्तर क्रोधावेशमें आकर उसने एक वृक्षपर मुष्टिप्रहार किया। उस प्रहारसे उस वृक्षके समस्त फूल टूट २ कर गिर गये। जिनसे उनके नीचेकी सर्व भूमि आच्छादित होगई। उन फूलोंको दिखला कर विश्वभूतिने द्वारपालसे कहा:—

"यदि बड़े पिताजी पर मेरी भक्ति न होती तो मैं इन फूलोंकी भांति तुम सब लोगोंके सिरोंसे पृथ्वीको आच्छादित कर देता। किन्तु उस भक्तिके कारण मैं ऐसा नहीं करना चाहता। किन्तु अब इस प्रकारके वंचनायुक्त भोगकी मुझे रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं। ऐसा कहकर वह "सभूति" नामके मुनिके पास गये और दीक्षा ग्रहण की। उन्हें दीक्षित हुआ जानकर विश्वनन्दी अपने अनुजके साथ वहां आये और उससे बहुत क्षमा याचना करते हुए राज ग्रहणकी प्रार्थना

की, किन्तु विश्वभूतिको राजसे बिलकुल विमुख जान वे वापिस घर लौट गये। इसके उपरान्त विश्वभूतिने बहुत उग्र तपश्चर्या की जिससे उनका शरीर अत्यंत कृश होगया। एकवार विहार करते हुये वे मथुरामें आये। उससमय वहांकी राजकन्यासे विवाह करनेके लिये विशाखा-नन्दी भी वहां आया था। एक मासके उपवासका पारणा करनेके लिये "विश्वभूति मुनि" नगरमें प्रविष्ट हुये। जिससमय वे विशाखनंदीकी छाव-नीके पाससे गमन कर रहे थे, उसी समय एक गायके साथ टकरा जानेके कारण वे गिर पड़े। यह देखकर विशाखानन्दी हँसा और कहने लगा पेड़ोंपरके फूलोंको गिरा देनेवाला वह तुम्हारा बल कहां गया? यह सुनते ही विश्वभूतिको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और अपनी धर्म-वृत्तिको भूलाकर आवेशमें आ उस गायके सींग पकड़कर उन्होंने आकाशमें फैंक दी। उसी समय उन्होंने धारणा की कि इस उग्र तपस्याके प्रभावसे मैं दूसरे भवमें अत्यन्त पराक्रमी होकर इस विशाखा-नन्दीका घात करूं। इसके कुछ समय उपरांत विश्वभूति मृत्यु प्राप्त कर महाशुक देवलोकमें उत्कृष्ट आयुवाले हुये।

इसी भरतक्षेत्रमें "पोतनपुर" नगरमें रिपुप्रतिशत्रु नामका बड़ा पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसकी रानीका मृगावती नाम था। विश्वभूतिका जीव महाशुभ स्वर्गमेंसे चयकर सात स्वप्न देता हुआ मृगावतीके गर्भमें आया। समय पूर्ण होनेपर मृगावतीने प्रथम वासुदेवको जन्म दिया। उसके पृष्ठभागमें तीन पसलियां होनेसे उसका नाम "त्रिपृष्ट" रखा गया।

वीर जीवन।

इधर विशाखानंदीका जीव अनेक भवोंमें परिभ्रमण करता हुआ "तुंगगिरी" नामक पर्वतपर "केशरीसिंह" हुआ। और वह शंखपुरके प्रदेशमें उपद्रव करने लगा। इसी समयमें "अश्वग्रीव" नामक वासुदेव बड़ा पराक्रमी राजा गिना जाता था। उसकी धाक सब राजाओंपर थी। एक दिन उसने "रिपुप्रतिशत्रु" के पास कहला भेजा कि तुम तुंगगिरी जाकर शालिक्षेत्रकी सिंहसे रक्षा करो। यह सुनकर राजा वहां जानेकी तैयारी करने लगा। परन्तु दोनों कुमारोंने उसे रोका और स्वयं वहां जानेको प्रस्थानित हुए। वहां जाकर 'त्रिपृष्ट' ने वहांके रक्षक गोप लोगोंसे पूछा कि दूसरे राजा जब यहां आते हैं तो वे किसप्रकार सिंहसे यहांके क्षेत्रोंकी रक्षा करते हैं? और कबतक यहां रहते हैं?

गोप लोगोंने कहा कि दूसरे राजा यहां प्रतिवर्ष आते हैं और जबतक शाली काट न लीजाय तबतक यहीं रहते हैं। वे इस क्षेत्रमें चारों ओर एक किला बनाकर रहते हैं। यह सुनकर "त्रिपृष्ट" ने कहा इतने समय पर्यंत कौन यहां व्यर्थ ठहरे, तुम मुझे उस सिंहको बताओ। मैं उसे मारकर सदैवके लिये आपत्ति मिटा दूंगा। गोप लोगोंने तुंगगिरीकी गुफामें बैठे हुए सिंहको दिखाया। हल्ला सुनकर वह सिंह क्रोधित होकर और मुँह फाड़कर कालकी भांति वहांसे निकला। उस सिंहको पैदल एवं अपनेको सवार, तथा उसे निःशस्त्र और अपनेको सशस्त्र देखकर "त्रिपृष्ट" ने विचारा कि यह युद्ध तो समान युद्ध नहीं है। यह विचार कर उन्होंने सब अस्त्र शस्त्र फेंक

दिये और रथसे उतर पड़े। यह देखते ही उस सिंहको पूर्व जाति-स्मरण हो आया। वह अत्यन्त क्रोधान्वित हो त्रिपृष्टपर आक्रमण करने दौड़ा। किन्तु 'त्रिपृष्ट' ने अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक एक हाथ उसके नीचेके जड़बेमें और दूसरा हाथ ऊपरके जड़बेमें डाल दिया। एवं अपने अखण्ड पराक्रमसे उसके मुँहको चीर दिया। सिंह घायल होकर गिर पड़ा।

एक साधारण निःशस्त्र व्यक्तिके द्वारा अपनी यह दशा देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। उसी समय इन्द्रभूति गणधरके जीवने जो कि उस समय "त्रिपृष्ट" का सारथी था, सिंहको धैर्य दिया, जिससे शांति प्राप्तकर उसने लोकान्तर गमन किया। दोनों कुमार अपना कार्य समाप्त कर वापिस पोतनपुर आगये।

इस घटनाको सुनकर "अश्वग्रीव" त्रिपुष्टसे बहुत डरने लगा। उसने कपटजाल द्वारा दोनों कुमारोंको मार डालनेका निश्चय किया। किन्तु जब वह सफल न हुआ तब उसने उनसे प्रत्यक्ष युद्ध छेड़ दिया, इस युद्धमें वह स्वयं त्रिपुष्ट द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् त्रिपुष्टने दिग्विजय करना आरम्भ किया। और अपने पराक्रम द्वारा दक्षिण भरतक्षेत्र पर्यन्त विजय प्राप्त कर पुनः पोतनपुर लौट आये। इस विजयमें उन्हें कई अत्यन्त मोहक व सुन्दर कण्ठवाले गायक भी मिले थे। एक दिन रात्रिके समय उन गवैयोंका गाना होरहा था, वासुदेव पलंगपर लेटे हुए गाना सुन रहे थे, उन्होंने शैय्यापालको आज्ञा दी कि जब हमारी आंख लग जाय तो तुम इन

गायकोंको विदा कर देना । कुछ समय उपरान्त उनकी निद्रा लग गई किन्तु शैय्यापाल संगीतके आनन्दमें इतना मग्न हुआ कि गायकोंको बिदा करना भूल गया, यहांतक कि उन्हें गाते २ प्रातःकाल होगया। जब वासुदेवकी निद्रा खुली तो उन गायकोंको गाते देखकर क्रोधित हो शैयापालसे पूछा कि "तूने अभीतक इनको विदा क्यों नहीं किया? शैयापालने अर्ज की कि—हे स्वामी! संगीतके लोभसे। यह सुन उनका क्रोध और भी प्रचण्ड हो उठा और शीघ्र ही उन्होंने उसके कानमें गर्म २ शीशा गलाकर डालनेकी आज्ञा दी। इससे शैयापालने महामंत्रणाके साथ प्राण त्याग किये। इस दुष्ट कृत्यसे वासुदेवने भी भयंकर असातावेदनीय कर्मके बन्ध बांध लिये और वहांसे देहावसान कर ये सातवें नर्कमें गये, और इनके वियोगमें दीक्षा धारण कर "अचल बलभद्र" मोक्षको गये।

नरकमेंसे निकलकर वासुदेवका जीव "केशरीसिंह" हुआ। वहांसे मृत्यु प्राप्तकर वह मनुष्य चौथे नरकमें गया। इस भांति उसने तिर्यंच एवं मनुष्य—योनिके कई भवोंमें भ्रमण किया।

तदनन्तर मनुष्य जन्म प्राप्त कर उसने शुभ कर्मोंका उपार्जन किया, जिसके फल स्वरूप वह अपर विदेहकी मूकानगरीके धनञ्जय राजाकी रानी "धारिणी" के गर्भमें गया। उस समय रानीको चक्रवर्ती पुत्रके सूचक चौदह स्वप्न दृष्टिगोचर हुए। गर्भस्थिति पूर्ण हुए पश्चात् रानीने एक सम्पूर्ण लक्षणोंयुक्त पुत्रको जन्म दिया। माता—

पिताने उसका नाम "प्रियमित्र" रक्खा। क्रमशः उसने बालावस्थासे यौवनावस्थामें पदार्पण किया तब संसारसे विरक्त हो धनञ्जय राजाने सब कार्य इन्हें दे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसने राज्य सिंहासनपर बैठनेके पश्चात् अपने पराक्रम द्वारा छहों खण्डोंमें विजय प्राप्त की, और चक्रवर्ती उपाधि ग्रहण की, तथा वह अत्यन्त न्यायपूर्वक पृथ्वीका पालन करने लगे।

एक दिन मूकानगरीके उद्यानमें "पोछिलं" नामक आचार्य पधारे, उनसे धर्मका स्वरूप समझकर इन्होंने अपने पुत्रको राज्य सौंप स्वयं दीक्षा ग्रहण की और अत्यन्त कठिन तपस्या करनेके पश्चात् इन्होंने इसी भवमें तीर्थंकर नामक नामकर्मका उपार्जन किया तथा साठ दिनतक अनशन ग्रहण कर वह दशम स्वर्गमें पुष्पोत्तर नामक विस्तृत विमानकी उपपाद नामक शैय्यामें देवता हुआ। एक अन्तर्मुहूर्तमें वह महर्द्धिक देव हो गया। पश्चात् अपने ऊपर रहे हुये वस्त्रको दूर कर शैय्या पर बैठकर इन्होंने सर्व सामग्रियाँ देखीं। उन सामग्रियोंको देखकर वह अत्यंत विस्मित हुये। किन्तु अवधिज्ञानके बलसे यह सब धर्मका प्रभाव जान शान्त होगये। इसके उपरान्त उनके सब सेवक देवता लोग एकत्रित होकर उनके समीप जाकर हाथ जोड़कर इसप्रकार स्तुति करने लगे:—

"हे स्वामी! हे जगतको आनन्द देनेवाले! हे जगतका उपकार करनेवाले भगवान्! तुम जयवन्त होओ। चिरकाल तक सुखी

होओ। तुम हमारे स्वामी हो, रक्षक हो और यशस्वी हो, तुम्हारी जय हो! हम तुम्हारे आज्ञाकारी देव है। ये सुन्दर उपवन हैं, ये स्नान करनेकी वापिकाएं हैं, ये सिद्धायतन है, यह सुधर्मा नामक एक सभाभवन है, और यह स्नानागृह है। इस भांति उनकी स्तुति कर देव उनकी सेवा करने लगे। इसप्रकार स्वर्गमें अपनी लम्बी आयु भोगकर वहांसे चयकर इनका जीव कुण्डन ग्रामके राजा सिद्धार्थकी त्रिशला रानीके गर्भमें सोलह स्वप्न देता हुआ स्थित हुआ।

भगवान्का जन्म।

जब त्रिशला रानीको गर्भ धारण किये नव मास और साढ़ेसात दिन होगये, तब दशों दिशायें प्रसन्न हो उठीं। सुगंधित पवन चलने लगी। समस्त संसार हर्षसे प्रफुल्लित हो उठा, पुष्पवृष्टि होने लगी, सुन्दर बयार चलने लगी, चारों दिशाओं, विदिशाओंमें शुभ शकुन होने लगे। इस भांति चन्द्र हस्तोक्षरा नक्षत्रमें चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन त्रिसला रानीने सिंहके लच्छनवाले सुवर्णके समान कांतिवान पुत्ररत्नको प्रसव किया।

जैन शास्त्रोंमें लिखा है कि प्रत्येक तीर्थंकरके जन्मके समय, जब किसी तीर्थंकरका जन्म होता है, तो स्वर्गमें सौधर्म नामक इन्द्रका आसन कम्पायमान होता है। इस शकुनसे वे तत्काल तीर्थंकरका जन्म जान अपने कौटुम्बीजनों सहित सूतिकागृहमें जाते हैं। और तीर्थंकरकी माताको मोहनिन्द्राके वशीभूत कर तीर्थंकरके स्थानपर मायामयी बालकको रख तीर्थंकरको उठा लेते हैं। एक इन्द्र प्रभुपर छत्र लगाता है। दो उनपर दोनों ओरसे चंवर करते हैं, और एक वज्र उछालता हुआ उनके आगे चलता है। सब मिलकर उन्हें पांडुकशिला पर ले जाते हैं और यहां लाकर एक हजार आठ कलशों द्वारा सब मिलकर उनका अभिषेक करते हैं एवं उनकी स्तुति करते हैं। तदनन्तर उन्हें वापिस उनकी माताके पास लाकर सुला देते हैं।

माताकी मोह निन्द्रा भंगकर तथा उस मायामयी बालकको मिटा वे लोग अपने लोकको गमन कर जाते हैं। ये सर्व बातें प्रत्येक तीर्थ-करके जन्मके समय होती हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजा सिद्धार्थने पुत्र जन्मोत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया। पुत्रकी खुशीमें उन्होंने सब कैदियोंको बन्धन रहित कर छोड़ दिया तथा अनेक प्रकारसे दान किया। तीसरे माताने हर्षित हो, पुत्रको सूर्य व चन्द्रके दर्शन कराये। राजा सिद्धार्थके यहाँ सुन्दर स्वरोंवाली मधुर स्वरसे सुन्दरी कोकिल कंठ समान कुल-शीला रमणियां मंगल गीत गाने लगीं। कुंकुमके रङ्ग समान सोलह शृंगारयुक्त अनेक कुलवती स्त्रियों सहित राजा एवं रानीने रात्रि जागरण किया। इस भांति जब ग्यारहवां दिन उपस्थित हुआ तब राजा व रानीने पुत्रका जात-कर्मोत्सव किया। बारहवें दिन राजाने अपने सर्व बन्धुजनोंको तथा जातिवालोंको बुलाया। वे सब कई प्रकारके सुन्दर मंगलमय उपहारों सहित आकार उपस्थित हुये। सिद्धार्थ राजाने योग्य प्रतिदानके साथ उनका आदर सत्कार किया। तत्पश्चात् उन्होंने उन सबसे कहा कि जबसे यह पुत्र हमारे गर्भमें आया है तबसे घरमें, नगरमें, राजमें, धन धन्यादिककी वृद्धि होरही है, इसलिये इस पुत्रका नाम "वर्धमान" रखना श्रेयस्कर है, और रक्खा जाय। इसका सब जनसमुदायने अनुमोदन किया एवं बालकका हर्षसहित **वर्द्धमान** नाम रक्खा।

वीर जीवन।

शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान बालक "वर्द्धमान" क्रमशः बढ़ने लगे। शैशवकालसे ही उनकी प्रतिभा एवं शक्तिके कई विलक्षण लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। माता-पिताको अपनी बालक्रीडाओं द्वारा आनन्दित करते हुए "वर्द्धमान" ने क्रमसे युवावस्थामें पदार्पण किया। जन्मसे लेकर अब तककी अनेक घटनाओंसे यद्यपि उनके माता-पिताको उनका महान् भविष्य दृष्टिगोचर होरहा था, तथापि सुलभ स्नेहवश उनके माता-पिताके हृदयमें उनके विवाहकी इच्छा उत्तेजित हुई।

माता-पिताका विवाहके लिये प्रेरणा करना और भगवानको वैराग्य होना।

राजा समरवीरने अपनी पुत्री "यशोदा" का विवाह कुमार "वर्द्धमान" से करनेका प्रस्ताव सिद्धार्थ राजाके पास भेजा। सिद्धार्थने उत्तर दिया मुझे एवं रानीको कुमारका विवाह महोत्सव देखनेकी तीव्र आकांक्षा है, किन्तु कुमार जन्म हीसे संसारसे उदासीन व विरक्तसे रहते हैं। इसलिये उनके सन्मुख इस प्रस्तावको उपस्थित करनेका हमसे साहस नहीं होता। हां! आज उनके मित्रों द्वारा उनके सामने प्रस्ताव रखवाया जायगा। इस प्रकार राजाने कुमारके मित्रोंको कई प्रकारकी बातें समझाकर उनके पास भेजा। उन्होंने बड़े प्रेमसे उनके सन्मुख विवाहका प्रस्ताव जाकर रक्खा। वर्द्धमान प्रभुने उत्तर दिया—तुम सदैव मेरे साथ रहनेवाले मेरे प्रेम-स्नेही मित्र हो. और मेरे संसार-विरक्त भावोंसे परिचित हो, अनभिज्ञ नहीं हो, फिर मेरे सम्मुख यह प्रस्ताव क्यों रखते हो?

मित्रोंने कहा—कुमार! हम भलीभांति जानते हैं कि तुम्हारे विचार संसारसे विरक्त हैं, किंतु इसके साथ २ तुम्हारा माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना भी परम उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त तुमने हमारे वचनोंकी भी कभी अवहेलना नहीं की है, फिर आज एकदम सबको क्यों कष्ट पहुंचाते हो?

वर्द्धमान—मेरे मोहग्रस्त मित्रवरो ! तुम्हारा यह आग्रह बहुत अनुचित है। क्योंकि स्त्री आदिका परिग्रह व भ्रमणका कारण होता है। मैं तो अब तक दीक्षा भी ग्रहण कर लेता किंतु इसी बातसे कि मेरे माता-पिताको वियोगजनित कष्ट होगा, मैं अबतक रुक रहा हूं।

इसी समय धीरे २ त्रिशलारानीने उस कमरेमें प्रवेश किया। उनको देखते ही आदर सहित "वर्द्धमान" उठ खड़े हुये और कहा माता! आप आईं यह तो अच्छा हुआ। किंतु आपके इतना कष्ट उठानेका क्या कारण है? आप मुझे बुला भेजतीं मैं स्वयं वहां आजाता।

त्रिशला—पुत्र! तुम अनेक प्रकारके शुभ कर्मोंके उदयसे हमारे यहां अवतरित हुये हो। जिसके दर्शनको तीनों लोक लालायित रहते हैं, वे ही पुण्योदयसे हमारे यहां पुत्र रूपमें प्रकट हुये हैं। क्या यह कम सौभाग्यकी बात है? मैं यह भले प्रकार जानती हूं कि तुम्हारा निर्माण जगत्के रक्षार्थ हुआ है। किंतु हमारा स्नेहप्रधान हृदय पुत्रत्वकी भावनाको तजनेमें असमर्थ है। इसलिये हमारी यह तीव्र अभिलाषा है कि हम तुम्हें वधू सहित देखें। तुम केवल हमें सन्तुष्ट करनेके निमित्त ही हमारे इस कथनको स्वीकार करो।

भगवान् महावीर माताके इस नम्रनिवेदनको सुन बड़े भारी विचारमें पड़े। मातासे घोर अनुनय विनय की कि हे माता! संसार आदिका मोह संसारसे विलग नहीं होने देता। मैं संसारसे विरक्त हूं। इसलिये मुझे क्षमा करो।

वीर जीवन।

फिर कुछ समय पश्चात् ३० वर्षकी उम्रमें महावीरस्वामीने दीक्षा ग्रहण करली। इस समय देवोंने दीक्षा कल्याणक उत्सव मनाया।

वीर भगवानके उस सर्वांगसुन्दर शरीरपर बढ़िया अमूल्यवान वस्त्रोंके स्थानपर दिगम्बरत्व शोभित होनेलगा। जो कोमल शरीर आज पर्यंत राज्यकी विपुल समृद्धिके मध्यमें फलित हुआ था एवं जिसकी तप्त स्वर्णकी ज्योतिने कभी उष्ण समीरका स्पर्श तक नहीं किया था वही मोहक प्रतिमा आज संयम कफनीसे आच्छादित होगई। संसारके पापोंको धो डालनेके निमित्त उन्होंने सर्व पुण्य सामग्रियोंका त्याग कर दिया। जिस शरीरकी शोभाको हम संसार-सागरकी कीचमें फंसे हुये अपना सर्वस्व समझते हैं और अत्यंत नेह करते हैं। वीर प्रभुने उसीको केशलोंच करके विनष्ट करदी। जिस सांसारिक भोगोंके वियोगसे हम क्षणभरमें कातर हो उठते हैं, उन भोगको उन्होंने लेशमात्र खेद किये विना जीर्ण तिनकेकी भांति तिलांजली दे दी। अतुल संपति, प्रिय प्रजा, सुन्दर महल आदि सबका त्याग करते समय उन्हें लेशमात्र भी मोह न हुआ।

दीक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् उसीसमय वीर प्रभुको मनःपर्यय-ज्ञानकी प्राप्ति हुई। यह दिन ईसाके ५६०. वर्ष पूर्व मार्गशीर्ष कृष्णा दशमीका था।

वीर प्रभुका भ्रमण।

शास्त्रों एवं पौराणिक ग्रन्थोंमें वीर प्रभुके भ्रमणका वृत्तांत बहुत ही अलंकार भावमें वर्णन किया गया है। दीक्षा लेनेके उपरांत लगभग बारह वर्ष पर्यंत उन्हें कैवल्य रहित अवस्थामें भ्रमण करना पड़ा था। इन बारह वर्षोंमें उनपर आये हुए उपसर्गोंका विवेचन बड़ी ही सुन्दर भाषामें वर्णित है। उनके इन असह्य कष्टोंके वर्णनको सुनकर या पढ़कर कोई भी व्यक्ति ऐसा न होगा, चाहे वह कितना ही सख्त हृदय क्यों न हो, जिसका हृदय व्यथित न होजाता हो। इसमें तो संदेह नहीं रहता कि अवश्य ही उन बारह वर्षोंमें प्रभुपर असंख्य विपत्तियोंके समूह आये होंगे। केवल वीर प्रभु ही पर नहीं, प्रत्येक मुमुक्षु जनपर ऐसी दशामें उपसर्ग आते हैं। पुराण ही नहीं, तत्वज्ञान भी इसका समर्थन करता है।

महान् पुरुषोंकी आत्मा ज्यों ज्यों मोक्षके अधिकाधिक समीप पहुंचनेका प्रयत्न करती है त्यों त्यों उसके पूर्वभवके सर्व पूर्वकर्म एकत्रित होजाते हैं। जैसे किसी विश्वासपात्र सेठके दिवाला निकालेजाने या बैंक फैल होजाने पर एकदम सर्व लेनदारोंकी मांग आने लगती है, उसी तरह मोक्षाभिमुख आत्माके उपार्जित किये हुये पूर्वकर्म एक साथ एकत्रित होकर फलाफल प्रदान करने लगते हैं। वे एकदम चुकता कर्ज वसूल करनेको उद्यत होजाते हैं।

यही बात भगवानके साथ भी हुई। किन्तु उन्हें हर्ष होता था। वे इन उपसर्गोंसे कर्मोंका क्षय होता है यह जान हर्षित होते थे।

एक समय प्रभु भ्रमण करते २ "मोराक" नामक ग्रामके समीप आये। वहांपर "दुईज" जातिके सन्यासी रहते थे। उन सन्यासियोंका कुलपति महावीरस्वामीके पिता राजासिद्धार्थका बड़ा मित्र था। उसने उनसे एक चातुर्मास उसी स्थानमें रहकर व्यतीत करनेकी प्रार्थना की। मोह रहित होनेपर भी उन्होंने उसे योग्य स्थान जान वहां रहना स्वीकार किया। उस कुलपतिने स्नेहवश उनके लिये एक फूँसका झोंपड़ा बना दिया, वर्षा होनेपर झोंपड़ीपर बहुतसा हरा घास उग गया और ग्रामकी बहुतसी गायें घासके मोहसे आकर घास खाने लगीं। अन्य तपस्वियोंने तो गायोंको भगा दिया। किन्तु भगवान बिलकुल निश्चेष्ट रहे। यहांतक कि गायोंने उनके झोंपड़ेको तृण रहित कर दिया। यह देख कुलपतिको बड़ा खेद हुआ। उसने उस विषयमें भगवानको कुछ उपदेश दिया। उसके वाक्योंको सुनकर वीर प्रभुने विचारा कि मेरे कारण इन सब लोगोंको खेद होता है। इसलिये अब मेरा इस स्थानपर रहना अनुचित है।

उसी समय उन्होंने निम्नलिखित पांच अभिग्रह धारण किये:—

(१) अप्रीतिकर स्थानपर कभी न रहना।

(२) प्राय: मौन धारण करके ही रहना।

(३) अञ्जली पात्रमें भोजन करना।

(४) गृहस्थका विनय नहीं करना।

(५) अञ्जलीमें ही जल ग्रहण करना।

इस प्रकार पांच अभिग्रह धारण कर वे चातुर्मासके पन्द्रह दिन व्यतीत होनेपर नियम विरुद्ध होते हुए भी वहांसे विहारकर 'अस्थिक' नामक गांवमें आये। उन्होंने वह चातुर्मास वहीं व्यतीत करना चाहा, किन्तु ग्रामके व्यक्तियोंने उनसे रुदन करते हुए कहा कि यहांपर एक यक्ष रहता है, और वह यहां किसीको नहीं रहने देता और जो कोई यहां हठपूर्वक रहनेका साहस करता है, उसे वह मार डालता है। इसलिये आप कृपया पासहीके इस दूसरे स्थानपर चातुर्मास निर्गमन कीजिये। किन्तु वीर प्रभुने उनका कहना स्वीकार न कर वहीं ठहरनेका निश्चय किया। एवं वे एक कोनेमें कायोत्सर्ग करके खड़े होगये। सन्ध्यासमय पुजारीने भी आकर वहां न रहनेकी उनसे प्रेरणा की, किन्तु प्रभुने मौन धारण कर रक्खा था। वे किसी प्रकार भी विचलित न हुए।

क्रमशः रात्रि होनेपर वह यक्ष मंदिरमें आया और वीर प्रभुको वहां देखते ही आग बबूला होगया। उसने उनको भयभीत करनेकी चेष्टासे भयंकर अट्टहास किया। वह अट्टहास समस्त जगतमें गूञ्जकर वायुमें नृत्य करने लगा। किन्तु वे उससे तनिक भी विचलित न हुये। तब उसने भयङ्कर हाथी, पिशाच आदिका रूप लेकर उन्हें डराना चाहा। जब उसके यह प्रयत्न भी निष्फल हुए तब उसने भयंकर सर्पका रूप धारण कर उनको स्थान स्थानपर डसना प्रारम्भ किया। किन्तु तपस्याके तेजोमय प्रभावसे उनपर बिषका लेशमात्र भी प्रभाव न हुआ।

वे पूर्ववत् अटल रहे। जब उसके सर्व प्रयत्न निष्फल होगये तब वह बहुत विस्मित हुआ और इन्हें महा शक्तिशाली जान नमस्कार किया तथा कहने लगा:—दयानिधि! प्रभु!! तुम्हारी शक्तिको न जान मैंने तुन्हें अत्यंत कष्ट दिये हैं, इसके लिये आपसे क्षमा याचना करता हूं, आप क्षमा प्रदान करिये।

वीर प्रभुने कहा—यक्ष! तू वास्तविक तत्वको नहीं समझता। तू व्यर्थके झंझटोंको छोड़कर जो यथार्थ तत्व है उसे समझ। वीतरागमें देवबुद्धि, साधुओंमें गुरुबुद्धि, एवं शास्त्रोंमें धर्मबुद्धि रख। अपनी आत्मा तुल्य सबकी आत्माको समझ। किसीको पीड़ा पहुंचानेका संकल्प त्याग, पूर्व किये हुए पापोंका प्रायश्चित्त कर। जिससे तेरा कल्याण हो।

उनके उपदेशसे यक्षने सम्यक्तको धारण कर प्रभुको नमस्कार कर गमन किया। वहांपर चातुर्मास व्यतीत कर प्रभु "मोराक" नामक ग्राममें आकर एक उद्यानमें ठहरे। वहांपर एक "अच्छन्दक" नामक पाखण्डी रहता था। वह बहुत दुष्ट था तथा मंत्र तंत्रका ढोंग कर लोगोंको ठगा करता था। भगवानने उसके पाखण्डको दूर कर उसे प्रबोधा। वहांसे गमन करते२ प्रभु "श्वेताम्बी" नगरीमें आये। यहांसे कुछ दूरीपर 'चण्डकौशिक' नामका सर्पका स्थान था। वहां जाकर उन्होंने उसे समकितका उपदेश दिया। इसप्रकार उस सर्पका उद्धार कर प्रभु "उत्तर वाचाल" नामक ग्रामके समीप आये। एक पक्षके उपवासका अन्त होनेपर पारणा करनेके निमित्त वे ग्राममें "नागसेन"

नामक गृहस्थके घर गये। उसी दिन उसका इकलौता पुत्र बारह वर्षके पश्चात् विदेशसे आया था। उसके आनेका उत्सव धूमधाम सहित मनाया जारहा था। ऐसे समयमें भगवान उसके यहां आहारके निमित्त पधारे। उन्हें देखते ही वह आनंदसे पुलकित हो उठा तथा अपना अहोभाग्य समझ बड़ी ही भक्तिभाव सहित प्रभुको आहार दिया।

वहांसे विहारकर प्रभु "श्वेताम्बी" की ओर चले। यहांका राजा बड़ा जिनभक्त था। वह प्रभुका आगमन सुन बड़ा हर्षित हो सपरिवार दर्शनार्थ आया। एवं भक्तिभाव सहित प्रभुकी वंदना की। यहांसे विहार करते हुये प्रभु अनुक्रमसे "सुरभिपुर" नामक नगरके समीप पधारे। वहां पर गंगानदीको पार करना पड़ता था। वे दूसरे यात्रियोंके साथ एक नावपर आरूढ़ होगये !!!

इसी स्थानपर उनके त्रिपुष्ट योनीका वैरी उस सिंहका जीव जिसे उन्होंने मारा था "सुदृष्ट" देव योनीमें रहता था। भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही उसको अपने पूर्वभवका स्मरण होआया, एवं उसने क्रोधित होकर बदला चुकानेके लिये उनपर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। वहां पर भगवान्‌की रक्षा कम्बल और सम्बल नामके दो देवोंने की और उन्हें सकुशल नदीके उस पार पहुंचाया।

प्रभु अपने चरणकमलों द्वारा गंगानदीकी रेतीको पवित्र करते हुये आगे गमन कर रहे थे कि इतनेमें ही 'पुष्य' नामक एक ज्योतिषीको पीछेसे रेतीमें मुद्रित हुये, उनके चरणचिह्नों पर दृष्टि पड़ी। वह सामुद्रिक लक्षणका ज्ञाता था। उसने सोचा कि अवश्य २ इस मार्गसे

अभी कोई चक्रवर्ती गया है। और उसे अभी तक राज्य प्राप्त नहीं हुआ है, किंतु शीघ्र ही होनेवाला है। कैसा अच्छा हो यदि उसके राज्य पर किसी प्रकार मैं अधिष्ठित हो जाऊँ। ऐसा विचार वह वहाँसे उधर ही को चला। आगे जाकर वह देखता क्या है कि एक अशोकके वृक्षके नीचे प्रभु कायोत्सर्गमें खड़े हैं। उनके मस्तक पर मुकुट चिह्न और भुजाओंमें चक्र चिह्न दिखलाई पड़ रहे थे। ज्योतिषी विचारने लगा यह कैसा आश्चर्य है। चक्रवर्तीके सर्व लक्षण युक्त यह व्यक्ति तो भिक्षुक है। अवश्य ही सामुद्रिक शास्त्र किसी झूठे पाखंडीके बनाये हुए हैं।

ज्योतिषीके मनोगत भाव अवधिज्ञान द्वारा इन्द्रको मालूम हुए, तथा इन्द्र तत्काल वहां आया और उस ज्योतिषीसे कहा—अरे मूर्ख! तू शास्त्रकी निन्दा क्यों कर रहा है? शास्त्रकार कोई भी बात असत्य नहीं लिखते। तू केवल अभीतक प्रभुके बाह्य लक्षणोंको ही जानता है, उनके अन्तर्लक्षणोंसे तू अभीतक अनभिज्ञ है। इन प्रभुका मांस एवं रुधिर दूधके समान उज्ज्वल एवं सफेद है। इनके मुख—कमलका श्वास कमलकी सुगंधकी भांति सुगंधित है। इनका शरीर बिलकुल निरोग तथा मल और पसीनेसे रहित है। ये तीनों लोकके स्वामी, धर्मचक्री एवं विश्वको आश्रय देनेवाले सिद्धार्थ राजाके पुत्र महावीर हैं। चौसठों इन्द्र इनके आधीन हैं। इनके सम्मुख चक्रवर्तीकी क्या गिनती है? शास्त्रानुकूल लक्षण विद्यमान हैं। अतः इसके लिये खेद न कर। मैं तुझे उसका फल दूंगा। ऐसा कह इन्द्रने

उसको इच्छानुसार फल प्रदान किया। तदनन्तर वह प्रभुकी भक्तिभाव सहित वन्दना कर इन्द्रलोकको चला गया।

प्रभु अपने चरणकमलों द्वारा पृथ्वीको पवित्र करते हुए अनुक्रमसे राज्यगृह नगरमें आये। उस नगरके समीप नालन्दा नामक भूमिभाग था। उसकी एक विशाल शालामें प्रभु पधारे और उस स्थानपर वर्षाकाल निर्गमन करनेके निमित्त उन्होंने वहांके लोगोंकी अनुमति ली। तत्पश्चात् मासक्षेपण (एक २ मासके उपवास) करते हुए प्रभु उस शालाके एक कोनेमें रहने लगे।

वहां 'मंखली पुत्र गोशाल' रहता था। इसको स्वभावसे ही कलह प्रिय थी। यह माता-पिता किसीका भी कहना न मानता था। जन्मसे ही लक्षणहीन और विचक्षण था। वह माता-पितासे कलह करके स्वतंत्र भिक्षार्थ निकल पड़ा। जिस शालाको प्रभुने अलंकृतकर रक्खी थी, यह भी उसीमें आकर ठहरा। प्रभु मास क्षपणका पारणा करनेके लिये शहरमें पधारे तथा इन्होंने 'विजयश्रेष्ठी' के यहां आहार लिया। उस समय शास्त्रोंमें लिखे अनुसार उस गृहस्थके घरमें देवताओंने आकाशसे रतनवृष्टि, पुष्पवृष्टि आदि पांच दिव्य प्रगट किये। इस संवादको जान गोशाला बड़ा विस्मित हुआ और विचारने लगा कि यह मुनि सामान्य मुनि तो जान नहीं पड़ते, क्योंकि इनको भोजन देनेवालोंके घरमें जब ऐसी समृद्धि होती है, तो अवश्य ही ये महान् पुरुष हैं। इसलिये मैं इस पाखण्डयुक्त व्यवसायको छोड़कर इनका शिष्य होजाऊँ। क्योंकि यह गुरु कभी निष्फल नहीं जायगा।

कुछ समय उपरान्त जब प्रभु आये तो गौशाला उनके समीप जा वन्दना कर बोला—

"प्रभो! मैंने तो सुज्ञ होकर भी अभीतक आप जैसे महान् पुरुषको नहीं पहचाना, यह मेरा दुर्भाग्य था। किन्तु अब मैंने आपको पहचान लिया है अतः आपका शिष्य बनूंगा। आजसे एकमात्र तुम्ही शरणदाता हो। ऐसा कह वह उनके उत्तरकी प्रतिज्ञा करने लगा। जब उत्तरमें उसने प्रभूको मौन पाया तो गौशाला मन ही मन प्रभुमें गुरु भक्ति रख भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करने लगा। कुछ दिन व्यतीत होनेपर प्रभुका दूसरा मास क्षपण (पूरा) हुआ। उस दिन उन्होंने "आनन्द" नामक गृहस्थके घर आहार लिया। गौशाला भी भिक्षावृतिसे निर्वाह करता हुआ रात्रि दिवस प्रभुके साथ रहने लगा।

एकसमय कार्तिक मासकी पूर्णिमाके दिन गौशालाने हृदयमें विचारा कि ये बड़े ज्ञानी प्रभु हैं ऐसा सदैव सुननेमें आता है। इसलिये आज मैं स्वयं इनकी परीक्षा करके देखूंगा। यह विचार उसने भगवानसे कहा—

"भगवान, आज प्रत्येक घरमें वार्षिक उत्सव मनाया जारहा है। ऐसे मंगलमय अवसरपर मुझे क्या भिक्षा मिलेगी? इसके उत्तरमें सिद्धार्थ*

* हेमचंद्राचार्यके लिखे अनुसार जिस समय भगवान भ्रमणको निकलते थे, उस समय इंद्रने उपसर्गोंमें उनकी रक्षार्थ "सिद्धार्थ" देवताको अदृश्य रूपसे रहनेकी आज्ञा दी थी। सिद्धार्थ सदैव इनके साथ रहता था तथा जहां कोई प्रश्नोत्तरका काम होता, उस समय प्रभुके हृदयमें प्रवेश कर वह उसका उत्तर देता था!

नामक देवताने प्रभुके हृदयमें प्रवृष्ट होकर कहा " भद्र ! आज तुझे खट्टा मट्ठा, कूर धान्य तथा दक्षिणामें खोटा रुपया मिलेगा। यह सुन कर उत्तम भोजनकी इच्छासे प्रातःकालसे ही घर २ भटकने लगा। किंतु उसे कहीं भी भिक्षा न प्राप्त हुई। अन्तमें जब मध्याह्न होनेको आया तब एक सेवक उसे अपने घर लेगया और खट्टा मट्ठा तथा कूर अन्न दिया। भूखा होनेके कारण वह उसको खागया। तत्पश्चात् चलते समय उसने एक खोटा रुपया उसको दक्षिणामें दिया। यह वृत्तांत देख वह मनमें अत्यंत लज्जित हुआ। इस घटनासे उसने निश्चय करलिया कि " होनहार जो होनी होती है वही होकर रहती है "। और इस नियतिवादके सिद्धांतको उसने ग्रहण किया।

वहांसे विहार कर प्रभु "कोल्लाक" तथा "स्वर्णखल" स्थानोंमें होते हुए "ब्राह्मण" ग्राममें आये। इस ग्रामके मुख्य दो महोल्ले थे। जिसके नन्द और उपनन्द दोनों भ्राता स्वामी थे। प्रभु आहार लेने नन्दके यहां गये। उसने बड़ी भक्तिभाव सहित प्रभुको आहार दिया। किन्तु गोशाला उपनन्दका बड़ा घर जान उसके घर गया। उपनंदकी आज्ञासे उसकी एक दासी इसके लिये बासी चावल लाई। यह देख वह उपनन्दका तिरस्कार करने लगा। इसपर उपनन्दने क्रोधित होकर दासीको आज्ञा दी कि यदि यह अन्न न ले तो इसके सिरपर डालदो। दासीने ऐसा ही किया। इसपर गोशालाने कहा कि यदि मेरे गुरुमें तपका तेज हो तो यह गृह जलकर भस्म होजाय। प्रभुका नाम सुन-कर आस-पासमें रहनेवाले व्यन्तरोंने उस घरको घासके पूलेकी भांति फूंक दिया।

वहांसे विहार कर प्रभु चम्पापुरी नगरीमें पधारे तथा यहां उन्होंने दो-दो मास क्षपण करनेकी प्रतिज्ञा लेकर तीसरा चातुर्मास व्यतीत करना आरम्भ किया। चातुर्मास समाप्त कर प्रभु गौशाला सहित फिर "कोल्लाक" ग्राममें आये। वहां एक शून्य गृहमें कायोत्सर्ग करके ध्यानमग्न होगये। और गौशाला बन्दरकी भांति चपलता करता हुआ बाहर दरवाजेपर बैठ गया।

उस ग्रामके स्वामीका "सिंह" नामका पुत्र था। वह अपनी "विद्युन्मति" दासीके साथ रतिक्रीड़ा करनेके लिये उस शून्य घरमें आया। उसने उच्च स्वरसे कहा "इस गृहमें जो कोई साधु-सन्यासी या मुसाफिर हो वह बाहर चला जाय।" प्रभु तो कायोत्सर्गमें रहनेके कारण मौन रहे, किन्तु गौशाला इन शब्दोंको सुनकर भी कुछ न बोला एवं चुपचाप सब बातोंको देखता रहा। उस युवकको जब कोई उत्तर न मिला तो उस युवकने निश्चिन्त हो उस दासीके साथ बहुत समय तक कामक्रीड़ा की। इसके बाद जब वह घरसे जाने लगा तब गौशालाने "विद्युन्मति" का हाथ स्पर्श किया। जिससे वह चिल्लाकर कहने लगी कि स्वामी! किसी पुरुषने मुझे स्पर्श किया है। यह सुन सिंहने गौशालाको खूब मारा। जब वह चला गया तो गौशालाने प्रभुसे कहा कि प्रभु! तुम्हारे होते हुए मेरी यह दशा हुई? "सिद्धार्थ" ने उनके शरीरमें प्रविष्ट होकर कहा, तू हमारे समान शीलव्रतका पालन क्यों नहीं करता? द्वारपर बैठकर इसप्रकार चपलता करनेका फल तो मिलता ही।

वहांसे विहार कर प्रभु " कुमार " नामक सन्निवेशमें आये और वहांके चम्पक रमणीय उद्यानमें वे प्रतिमाधार कर रहे। इस ग्राममें एक " कुपन " नामका कुम्हार बड़ा धनी रहता था, और यह मदिरापानका बड़ा व्यसनी था। उससमयकी शालामें मुनि चन्द्राचार्य नामके पार्श्वनाथ प्रभुके एक बहुश्रुत शिष्य रहते थे। वे अपने शिष्य सूरिको गच्छके पाटपर बिठाकर स्वयं "जिनकल्प"का दुष्कर तप कर्म करते थे। तप, सत्य, श्रुत, एकत्व और बल ऐसी पांच प्रकारकी तुलना करनेके निमित्त वे समाधियुक्त रहते थे। एक दिन वह जब भिक्षावृत्तिके लिये उस ग्राममें गया तो उसने इन रंगीन वस्त्रोंको धारण करने तथा पात्रोंको रखनेवाले साधुओंको देखकर उनसे पूछा।

" तुम कौन हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि हम श्री पार्श्वनाथके निर्ग्रंथ निगाण्ठ शिष्य हैं। "गौशाला" ने हंसकर कहा—क्यों व्यर्थ झूठ बोलते हो। अनेक प्रकारके वस्त्र रखते हुए भी तुम निर्ग्रंथ हो ? शायद केवल उदरपूर्तिके लिये ही इस पाखण्डकी कल्पना कीगई है। इस प्रकार होते २ वाद विवाद बढ़गया, तब क्षुब्ध होकर गौशालाने कहा कि उपाश्रय जलजाय। उन्होंने कहा कि तेरे वचनोंसे हमारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होसक्ता। वहांसे लज्जित हो गौशाला प्रभुके पास आया और कहने लगा कि प्रभो ! तुम्हारी निन्दा करनेवाले साधुओंको मैंने शाप दिया कि तुम्हारा उपाश्रय जल जाय, किंतु वह न जला, इसका क्या कारण है ? " सिद्धार्थ " ने उत्तर दिया—अरे मूर्ख ! वे श्री "पार्श्वनाथ स्वामी" के शिष्य हैं, तेरे शाप द्वारा उनका क्या अनिष्ट होसक्ता है ?

यहांसे गमनकर वीरप्रभु "चोटाक" नामक ग्राममें आये। वहां पर चोरोंको ढूंढ़नेवाले सरकारी कर्मचारियोंने प्रभु एवं गौशालाको चोर जान पकड़ लिया तथा कुएमें ढकेल दिया। उसी अवसरपर "सोमा" और "जयंति" नामक दो साध्वियें उधर आ निकलीं। यह संवाद जान उन्होंने अनुमान किया कि कहीं ये साधु अंतिम तीर्थंकर भगवान् तो नहीं हैं। यह विचार वे वहां आईं और प्रभुकी ऐसी स्थिति देखकर वे सिपाहियोंसे बोली—ओ मूर्खो ! तुम क्यों मरनेकी इच्छा कररहे हो ? ये तो सिद्धार्थ राजाके पुत्र अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं। यह सुनते ही उठकर उन्होंने भगवानको आदर सहित बाहर निकाल क्षमा याचना की।

क्रमश: भ्रमण करते २ प्रभु चौथा मास व्यतीत करनेके लिये "पृष्टचम्पा" नामक नगरीमें पधारे। यहां पर उन्होंने चार मास क्षपण अर्थात् (चार मास तक उपवास) किया। वहांसे गमनकर "कृतमङ्गल" ग्राममें आये। उस ग्राममें कई पाखण्डी रहते थे। उनके महोल्लोंके बीचमें एक मंदिर था, उसमें उनके कुलदेवताकी प्रतिमा थी। भगवान् उस मंदिरके एक कोनेमें कायोत्सर्ग लगाकर खड़े होगए। माघका महिना था, कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। जब आधी रात्रिका समय हुआ तो उस गांवके व्यक्ति अपनी स्त्री बच्चों सहित वहां आये और मद्यपान कर नाचने लगे। यह देखकर "गौशाला" हंसकर बोला—अरे ! ये क्या ? ये पाखण्डी कौन हैं ?? जिनकी स्त्रियां भी मद्य सेवन कर-करके नाच रही हैं। यह सुनते ही उन सब लोगोंने गौशा-

लाको पकड़कर घरसे निकालकर बाहर कर दिया। ऐसी अवस्थामें अत्यंत शीतसे "गौशाला" कांपने और दांत कटकटाने लगा। यह देखकर उन लोगोंको दया आई और वे उसको अन्दर लेआये। कुछ समय उपरांत जब उसको गर्मी पहुंची और कुछ शीत कम हुआ तो फिर वह उसी प्रकार बोला। उन्होंने फिर क्षुब्ध होकर उसे बाहर निकाल दिया। फिर वह कांपने और गिड़गिड़ाने लगा, फिर वे उसको अन्दर ले आये। फिर उसने ऐसा ही किया। इसप्रकार उसको तीनबार लाये और बाहर निकाला। चौथीबार जब उसने यही वाक्य कहे तो वे उसे मारनेको उद्यत हो गये। किन्तु वृद्धोंने यह समझाकर कि यह कोई पागल है उनको रोक दिया।

इस भांति अपनी अल्पबुद्धि एवं चञ्चलतासे वह पद—पदपर अपमानित होता, तथा मार खाता प्रभुके साथ विचरण करने लगा। अन्तमें जब वह मार खाते २ तंग आ गया तो एक स्थानपर जहांसे दो रास्ते फटते थे: वह भगवानसे कहने लगा—प्रभो! अब मैं आपके साथ नहीं रहूंगा, कारण मुझे कोई गाली देता है, कोई मारता है, कोई अपमानित करता है। आप किसीसे कुछ भी नहीं कहते हैं। आपको उपसर्ग होते हैं और मुझे भी आपके साथ उपसर्ग सहन करने पड़ते हैं। लोग मुझे कष्ट देते हैं। इसलिये अब मैं जाता हूं। यह कह वह जिस रास्तेसे भगवान जा रहे थे, उसको छोड़कर दूसरे रास्तेसे चला गया।

आगे चलकर वह ऐसे भयानक जङ्गलमें जा पहुंचा जहांपर

पांचसौ चोरोंका अड्डा था। चोरोंने इसे देखते ही मारना शुरू किया। पश्चात् एक चोर इसके कन्धेपर चढ़कर चाबुकसे मारने और चिल्लाने लगा। जब इसका श्वास मात्र शेष रह गया तब वे इसे छोड़कर चले गये, उस समय "गौशाला" अत्यन्त पश्चाताप करने लगा कि हाय! प्रभो!! यदि मैं तुम्हारा साथ न छोड़ता तो मेरी यह दुर्दशा क्यों होती?

भगवान् विहार करते हुये "शालिशीर्ष" नामक ग्राममें पहुंचे। वहां इनके पूर्वभवकी एक व्यंतरी एक उद्यानमें रहती थी, यह "त्रिपुष्ट"के भवमें इनकी स्त्री थी। उस भवमें इन्होंने इसका अनादर किया था। उसीका बदला लेनेके निमित्त उसने इनपर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। वह कड़ाकेकी सर्दीमें बर्फके समान ठण्डी हवा चलाने लगी। अत्यंत शीत जलके बिन्दु प्रभुके नग्न शरीरपर बर्षाने लगी। इस प्रकार वह प्रभुपर उपसर्ग करती रही। जब उसने देखा कि मेरे उपसर्गका इनपर कुछ प्रभाव नहीं होता और प्रभु तनिक भी विचलित नहीं होते तब वह बड़ी विस्मित हुई, एवं अंतमें पश्चाताप पूर्वक प्रभुसे क्षमा मांगकर अंतर्द्धान होगई।

कुछ दिनोंके पश्चात् "गौशाला" इधर उधर भ्रमण करता हुआ फिर प्रभुके पास आया तथा अनेक भांतिसे क्षमा याचना कर उनके साथ भ्रमण करने लगा। वह चातुर्मास प्रभुने "आलंभिका" नगरीमें व्यतीत किया। वहांसे भगवान् कुंडकमर्दन, पुरिमताल, दुण्णाक आदि स्थानोंमें गये। प्रायः गौशालाने अपनी मूर्खतासे इन

सर्व स्थानोंपर मार खाई तथा अपमानित हुआ।

वहांसे विहार कर प्रभुने आठवां चातुर्मास मास क्षपणके साथ राजगृहमें व्यतीत किया। इसके उपरांत उन्होंने सोचा कि अभी मेरे कर्मोंकी निर्जराका होना शेष है, यह विचार कर कर्मोंकी निर्जरा करनेके निमित्तसे गोशाला सहित वज्रभूमि, शुद्धभूमि, लाट, म्लेच्छ आदि भूमिमें गये। इन स्थानोंमें म्लेच्छों द्वारा भगवानपर अनेक प्रकारसे उपद्रव हुए। कोई उनका व्यंग करता, कोई निंदा करता, कोई दुष्ट स्वभावानुसार उनपर शिकारी कुत्तोंको छोड़ता। किन्तु प्रभु यह विचार कर कि इन उपसर्गोंसे कर्मोंका क्षय होता है, खेदकी जगह हर्ष मानते थे। कर्मोंका क्षय करनेवाले प्रभु, कर्मोंका क्षय करनेमें म्लेच्छोंकी सहायता जान उन्हें बन्धुके समान देखते तथा स्नेह करते थे। धूप एवं शीतसे बचनेके लिये प्रभुको आश्रयस्थान भी प्राप्त नहीं होता था। छः मास पर्यन्त धर्म-जागरण करते हुए वे इन्हीं स्थानोंमें गर्मी व शीतको सहते हुए तथा एक वृक्षके नीचे रहकर उन्होंने चौथा चातुर्मास निर्गमन किया।

वहांसे विहार कर प्रभु गोशाला सहित सिद्धार्थपुरमें आये। वहांसे कूर्मगांवकी ओर जारहे थे कि रास्तेमें एक तिलका पौधा देखकर गोशालाने कहा:—

प्रभो! यह तिलका पौधा फलेगा या नहीं? भवितव्यताके योगसे स्वयं भगवान् मौन छोड़कर बोले! भद्र! यह तिलका पौधा फलेगा तथा इससे सात तिल उत्पन्न होंगे। प्रभुकी इस बातको असत्य करनेके

लिये उसने उस पौधेको वहांसे उखाड़कर दूसरे स्थानपर रखदिया। संयोगवश उसी समय उस ओरसे एक गाय निकली उसके पैरका जोर लगनेसे वह पेड़ वहीं लगगया।

वहांसे विहार कर प्रभु कूर्मगांव गये। वहांपर गौशालाकी दृष्टि "वैशिकायेन" नामक एक तपस्वीपर पड़ी। वह तत्काल वहांसे प्रभुका साथ छोड़कर वहां आया और तापससे कहने लगा कि अरे तापस! तू कौन कौनसे तत्व जानता है? और विना कुछ जाने तू क्यों व्यर्थ पाखंड करता फिरता है? यह सुनकर भी वह क्षमाशील तापस मौन रहा। तब गौशाल इसी भांति अनेक दुर्वचन कहने लगा। अन्तमें तापसको क्रोध चढ़आया और उसने क्रोधित होकर उसपर तेजोलेश्याका प्रहार किया। तेजोलेश्याके पराक्रमसे अन्तअग्निकी लपटें उसको भस्म करनेके लिये उसपर दौड़ीं, जिससे वह भयभीत होकर त्राहि माम्! त्राहि माम्!! करता हुआ प्रभुके समीप आया। भगवान्ने उसको इस अवस्थामें देखकर उसकी रक्षार्थ दयार्द्र हो शीतलेश्याको छोड़ी जिससे तुरन्त अग्निकी ज्वालाएं शांत होगईं। यह दृश्य देख वह तापस अत्यंत विस्मित हुआ; एवं प्रभुके समीप आकर विनय पूर्वक कहने लगा— भगवान्!! मैं आपकी शक्तिसे परिचित न था। इसलिये मुझसे यह अनुचित आचरण होगया। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूं; आप मुझे क्षमा प्रदान करें। इसप्रकार वह क्षमायाचना कर अपने स्थानको गया। पश्चात् गौशालाने प्रभुसे पूछा—"भगवान्! यह तेजोलेश्या किस रीतिसे प्राप्त की जासक्ती है? प्रभुने उत्तर दिया। जो मनुष्य नियम पूर्वक

"छट्ठ" करता है तथा एक मुट्ठि 'कुल्माष' एवं अंजलि भर जलसे पारणा करता है, उसे छः मासके उपरांत तेजोलेश्याकी प्राप्ति होती है।

जब कूर्मग्रामसे विहारकर पुनः प्रभु सिद्धार्थपुरकी ओर प्रस्थान कर रहे थे तो मार्गमें वही तिलका पौधा मिला। वहां आकर गौशालाने कहा, प्रभु! आपने जाते समय जिस तिलके पौधेकी बात कही थी वह लगा नहीं? भगवान्‌ने कहा—लगा है और यहीं है। तब उसने उसे चीरकर देखा, जब उसमें सात ही दाने दिखाई दिये तो वह अत्यंत आश्चर्यान्वित हुआ. तथा उसने यह निश्चय किया कि शरीरका परावर्तन करके जीव पीछे जहांके तहां उत्पन्न होते हैं। बादमें वह तेजोलेश्या साधनेके लिये प्रभुसे अलग होकर "श्रावस्ती" नगरीको चला गया।

और प्रभुकी बताई हुई विधिके अनुसार तेजोलेश्या सिद्ध की। तत्पश्चात् वह उसकी परीक्षा करनेके निमित्त एक पनघट पर गया। वहां क्रोध उत्पन्न करनेकी इच्छासे उसने एक दासीका घड़ा कंकर मार कर फोड़ दिया। जिससे वह दासी क्रोधान्वित हो उसे दुर्वचन कहने लगी। यह देखते ही उसने शीघ्रतासे उस तेजोलेश्याका प्रहार कर दिया, जिससे वह वहीं जलकर भस्म होगई।

एक समय पार्श्वनाथके छः शिष्य जो कि चारित्रभ्रष्ट होगये थे, किन्तु 'अष्टांगनिमित्त' के प्रकाण्ड पण्डित थे, वे गौशालाको मिले। उसने उनसे "अष्टांग निमित्त" का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया। अब क्या था? तेजोलेश्या और "अष्टांग निमित्त" का ज्ञान मिल जानेपर

उसने स्वयंको जिनेश्वर प्रसिद्ध कर दिया, तथा यह नाम धारण कर भ्रमण करने लगा।

प्रभु सिद्धार्थपुरसे विहार कर वैशाली, वाणिज्य, सानुयाष्टिक म्लेच्छ लोगोंसे भरपूर "पेढाण" गांवमें आये। इसी स्थानपर भगवानपर अन्तिम "संगमदेव" वाला उपसर्ग हुआ। वहांसे विहार कर भगवान् गोकुल, श्रावस्ती, कौशांबी, एवं वाराणसी नगरीमें होते हुए "विशालपुरी" में आये। यहां जिनदत्त नामका एक बड़ा धार्मिक श्रावक रहता था। वैभवका क्षय होजानेसे वह "जीर्णश्रेष्टि" के नामसे प्रसिद्ध था। वह जब उद्यानमें पहुंचा तो बलदेवके मंदिरमें कायोत्सर्गमें लीन प्रभुको उसने देखा तथा अनुमान बलसे यह जाना कि—"ये अन्तिम तीर्थंकर वीर प्रभु हैं" वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ एवं बड़ी भक्तिभाव सहित उनकी वन्दना की। उसके पश्चात् उसने सोचा कि आज प्रभुको उपवास प्रतीत होता है। यदि ये उपवास मेरे घरपर खोलें तो कितना अच्छा हो, यह आशा धारण कर उसने लगातार चार मास पर्यन्त प्रभुकी सेवा की। तथा तीन दिन प्रभुको आमंत्रित कर वह अपने घर गया। उसने बहुतसे प्रासुक भोजन आहार देनेके निमित्त तैयार कराये। और बड़ी उत्सुकतासे प्रभुकी प्रतीक्षा करने लगा, किन्तु संयोगवश उस दिन प्रभुने उधर न जाकर वहांके नवीन नगरसेठके घर आहार ले लिया। यह सेठ बड़ा मिथ्यादृष्टि था एवं लक्ष्मीके मदमें मदोन्मत्त था। भगवानको देखकर इसने अपनी दासीको आज्ञा दी कि तू उस साधुको भिक्षा दे दे। वह

काठके वर्तनमें "कुल्माष" धान्य लेकर आई और वह आहार उसने प्रभुको दिया।

उस समय देवताओंने उसके घरमें "पांच दिव्य" प्रकट किये। जैन शास्त्रोंमें कहा है कि जिसके घर तीर्थंकरकाका आहार होता है उसके यहां देवता पांच दिव्य रत्नोंकी वर्षा करते हैं। यह देखकर वह "जीर्णश्रेष्टि" बहुत दुखिया हुआ और मन ही मन कहा— आह! मुझ जैसे मन्द-भाग्य वालेको धिक्कार है। मेरा सर्व मनोरथ व्यर्थ गया, प्रभुने मेरा गृह छोड़कर अन्य स्थानपर आहार लेलिया।

आहार लेकर प्रभु तो अन्यत्र विहार कर गये। संगम उसी उद्यानमें श्री पार्श्वनाथ स्वामीके केवली शिष्य हुए थे, उनके समीप जाकर वहांके राजा और अन्य प्रजाके मनुष्योंने पूछा—भगवान्! नवीन श्रेष्टि और जीर्णश्रेष्टि इन दोनोंमेंसे कौन पुण्यका अधिक भागी हुआ। केवलीने उत्तर दिया कि जीर्णश्रेष्टिको पुण्यका अधिक भाग प्राप्त हुआ। इसपर उपस्थित जनसमुदायको आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—यह कैसे? क्योंकि उसके घर पर तो प्रभुने आहार ही नहीं लिया, उनको तो आहार देनेवाला नवीनश्रेष्टि है। केवलीने उत्तर दिया—भावोंसे तो उस जीर्णश्रेष्टिने ही प्रभुको पारणा करवाया एवं उस भावसे उसने अच्युत देवलोकको उपार्जन कर संसारको तोड़ डाला है, और यह नवीनश्रेष्टि इन भावोंसे रहित है। इसलिये इस पारणेका फल इसको इसलोक सम्बन्धी ही मिला है। जिस प्रकार कर्तव्यके लिये किया हुआ पुरुषार्थहीन मनोरथ निष्फल होता है, उसी

भांति भावनाहीन क्रियाका परिणाम भी अत्यंत अल्प होता है।

वहांसे विहार कर प्रभु "सुसुमापुर" गांवमें आये। वहांसे भोगपुर, नन्दिग्राम, मेढ़कग्राम होते हुए प्रभु कौशाम्बी नगरीमें आये। कौशाम्बीमें उस समय "शतनिक" राजा राज्य करता था। उसकी मृगावती रानी थी, वह बड़ी धर्मात्मा एवं परम श्राविका थी। शतनिक राजाका सुगुप्त मंत्री था। उसकी नन्द नामकी पत्नी थी, वह भी धर्मपरायण तथा मृगावतीकी स्नेहमयी सखी थी। उस नगरीमें धनावह नामका एक सेठ रहता था, उसकी मूला नामकी स्त्री थी। पौष मासकी कृष्ण प्रतिपदाको वीर प्रभु यहां आये। उस दिन प्रभुने भोजनके लिये बड़ा कठिन अभिग्रह धारण कर लिया।

"कोई सती एवं सुन्दर राजकुमारी दासीवृत्ति करती हो, उसके पांवमें लोहेकी बेड़ी पड़ी हो, उसका सिर मुण्डा हुआ हो, भूखी हो, रुदन करती हो, वह एक पांव देहली पर और दूसरा पांव बाहर रक्खे खड़ी हो, अन्य भिक्षुक उसके यहां आकर लौट गये हों, ऐसी स्त्री सूपके एक कोनेमें उर्द रखकर उनका आहार मुझे करावे तो करूं, अन्यथा चिरकाल तक मैं अनाहार रहूं।

ऐसा अभिग्रह लेकर प्रभु प्रतिदिन गोचरीके समय उच्च घरोंमें जाने लगे। किन्तु कहीं भी उन्हें अपने अभिग्रहकी प्रतीक्षाके लक्षण दृष्टिगोचर न हुए और इसप्रकार चार मास व्यतीत होगये। यह देखकर सबको बड़ी चिन्ता हुई और वे प्रभुका अभिग्रह जाननेकी चिन्ता करने लगे। राजा, रानी, मंत्री, प्रजा, आदि सभी चिंतित हुए।

कोई ज्योतिषियोंसे पूछने लगे किन्तु वह भी सब निष्फल रहा।

कुछ समय पूर्व "शतनिक" राजाने चम्पानगरीपर चढ़ाई की थी। चम्पापति "दधिवाहन" राजा उससे भयभीत होकर भाग गया था। तब "शतनिक" राजाने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि जिसको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो वह वही लूट ले। राजाकी आज्ञा पाते ही सेनागणोंने सर्व राज्य लूट लिया।

"दधिवाहन" राजाकी धारिणी नामक स्त्री एवं उसकी कन्या वसुमती इन दोनोंको एक ऊंटवाला हरणकर लेगया। धारिणीदेवीपर मोहित होकर उस ऊँटवालेने कहा कि—"यह "रूपवती स्त्री तो मेरी स्त्री होगी और इस कन्याको कौशाम्बीके चोरोंको बेच दूंगा।" यह सुनते ही सती धारिणीदेवीने प्राणत्याग कर दिये। यह देखकर उस ऊँटवालेको बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ऐसी सती स्त्रीके प्रति ऐसे दुष्ट बचन कहकर मैंने बहुत भारी पाप किया। इस कार्यसे वह अपनेको अनेकोंवार धिक्कारने लगा। इस प्रकार पश्चात्ताप कर वह उस कन्याको अत्यन्त सम्मानपूर्वक कौशाम्ची नगरीमें लाया। एवं बेचनेकी इच्छासे बीच रास्तेमें खड़ी करदी। इतनेमें उसी मार्गसे धनावह सेठ निकला, तथा उस कुमारीको उच्च—कुलोत्पन्न जान उसे बड़ी शुभ भावनासे खरीद लिया और घर लाकर पुत्रीकी भांति बड़े सम्मानपूर्वक रखने लगा। उसका नाम उसने **चन्दना** रक्खा।

कुछ समय बाद दोयजके चन्द्रमाकी भांति उसका पूर्ण यौवन विकसित होने लगा। पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर जिसप्रकार सागर

हर्षोत्फुल्ल होजाता है वह सेठ भी उसे विलोककर प्रफुल्लित होने लगा। किंतु उस सेठकी स्त्री मूलाको उसका विकसित सौन्दर्य देखकर अत्यंत द्वेष होने लगा। वह विचारने लगी कि सेठने यद्यपि इस कन्याका पालन पोषण पुत्रीवत् किया है किंतु यदि उसके सौन्दर्यके प्रतापसे सेठ उससे विवाह करलें तो मैं क्या करूंगी, अपने हृदयके इस स्वार्थवश वह चिंतित रहने लगी। एक दिन गर्मीमें सेठ दुकानपरसे घर आये। उससमय कोई सेवक वहां नहीं था। इसलिये चन्दना ही उनके पांव धोनेके निमित्त वहां आई। सेठके अनेक मना करने पर भी वह पितृभक्तिमें लीन हो सेठके चरण धोने लगी। उससमय स्निग्धि, श्याम केशपाश, कीचड़में भूमिपर गिरगया। उससमय सेठने सन्तान स्नेहके वशीभूत होकर उसे ऊपरको उठा दिया। कहीं सेठकी स्त्री यह सर्व दृश्य देख रही थी। यह देख उसकी चिंता द्विगुणित होगई। उसने विचारा कि जिस बातसे मैं डर रही थी वही बात सम्मुख आरही है। यदि अब इसका उचित उपाय न किया जाय एवं इसे उचित प्रतिकार न दिया जाय तो फिर मेरे विनाशमें निश्चय ही है। इस भांति स्वार्थवश उसका दुष्ट हृदय उस निर्दोष बालिकाके विनाशका संकल्प मन ही मन करने लगा। कुछ समय उपरांत अवसर पाकर उसने एक नाईको बुलाकर चन्दनका सिर मुण्डवा दिया, इसके बाद उसके पांवमें लोहेकी बेड़ी डालकर "मूला"ने उसको बहुत मारनेके पश्चात् उसको एक एकांत कमरेमें बन्दकर बाहरसे ताला लगादिया। और घरके सब दास दासियोंको मना करदिया कि सेठके पूछने पर भी उनसे यह वृतांत

कोई न कहना। ऐसा आदर्श वह दास-दासियोंको कर स्वयं अपने पिताके यहां चलीगई। इधर सेठने नौकरोंसे चन्दनाके विषयमें पूछा किन्तु "मूला"के भयके कारण किसीने कुछ न बताया। इससे सेठने यह विचारा कि शायद वह अपनी सखियोंसे मिलने गई हो, सेठ चुप रहे। किंतु जब दो तीन दिन होगये और चंदना दिखाई न पड़ी तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सब सेवकोंसे क्षुब्ध होकर कहा—

सत्य बताओ, चंदना कहां है, नहीं तो मैं तुम्हें उचित दण्ड दूंगा। एक वृद्ध दासीने अपने हृदयमें यह विचारा कि अब मेरा जीवन तो अल्प जीवन है, यदि इसके प्रतिकारमें एक निर्दोष दीर्घजीवी बालिकाका जीवन बच जाय तो अच्छा है! सेठसे सर्व वृतान्त बता दिया। सेठने शीघ्रतापूर्वक उसको बाहर निकाला। उसकी ऐसी दुर्दशा देख सेठको अत्यन्त दुःख हुआ। उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। उन्होंने चन्दनासे कहा—पुत्री! तुझे बड़ा कष्ट हुआ, अब तू धैर्य धारण कर, ऐसा कह सेठ उसके भोजनार्थ पाकशालामें गये, किन्तु वहां केवल एक सूपड़ेके कोनेमें थोड़ेसे कुलमाष (उड़दकी टिकियां) के अतिरिक्त अन्य कुछ न था। उन्होंने वह सूप ज्योंका त्यों उसे लाकर दे दिया एवं कहा—पुत्री! मैं तेरी बेड़ी काटनेके लिये लुहारको बुला लाऊँ इतने तू इनको खाकर कुछ सन्तुष्ट हो।

चन्दना दरवाजेके पास उस सूपको लेकर विचारने लगी कि कहां तो मैं राजाकी पुत्री और कहां ये कुलमाष! ये भी आठ दिनके

उपवासके बाद मिले, किन्तु विना किसी अतिथिको पहिले भोजन कराये, मैं कैसे भोजन करूं ? यह विचार वह अतिथिकी प्रतीक्षा करने लगी। सौभाग्यवश उसी समय विहार करते हुए वीर प्रभु वहां आ पहुंचे। उनके देखते ही चन्दना प्रसन्न हुई, तथा उन्हें आहार देनेके लिये उसने बेड़ीसे जकड़ा हुआ अपना एक पैर देहलीसे बाहर किया, और कहा, हे प्रभो ! यद्यपि यह अन्न आपके योग्य नहीं है, किन्तु आप तो स्वयं परोपकारी हैं, इसलिये इसे ग्रहण कर मुझे अनुग्रहीत करें। किन्तु उस समय उसके नेत्रमें आंसू न थे, इसलिये प्रभु वहांसे आगे चलने लगे। उनके मुड़ते ही चन्दना इतनी अधीर हुई कि उसके नेत्रोंसे टप-टप अश्रुबिन्दु झड़ने लगे।

यह देखते ही प्रभुका अभिग्रह पूर्ण हुआ देख देवताओंने प्रसन्न हो चन्दनाके यहां पांच आश्चर्य प्रकट किये तथा स्वयं ही चन्दनाकी बेड़ियां कट गईं तथा केशपाश पूर्वकी ही भांति सुशोभित हो गये। पश्चात् राजा, रानी, मन्त्री आदि समस्त प्रजागण वहां आकर उस कन्याके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने लगे। प्रभुके वहांसे चले जानेपर राजा "शतनिक" चन्दनाको अपने घर ले आये तथा उसको अपनी कन्याओंके अन्तःपुरमें रक्खा। प्रभुको कैवल्य उत्पन्न होनेपर चन्दनाने दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

यहांसे विहार कर भगवान सुमङ्गल, चम्पानगरी, मेढ़क ग्राम, आदि स्थानोंमें होते हुए "खडग मानि" ग्राममें आये, और ग्रामके बाहर कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। इसी स्थानपर उनके "त्रिपुष्ट"

भवके वैरी शय्यापालका जीव गुवालेके रूपमें दो बैलोंको चराता हुआ वहां आया। उसने किस प्रकार उनके कानोंमें अपना पूर्वभवका बदला चुकानेके लिये कीलें ठोकदीं, और किसप्रकार उनको खड़गवैद्यने निकाली तथा निकालते समय प्रभुने चीख मारी आदि सर्व वृतान्त आगे दिया जाचुका है। भगवान पर आनेवाले सर्व उपसर्गोंमें यह उपसर्ग अन्तिम दुःखद था।

वीर प्रभुने अपनी अपूर्व सहनशक्तिसे गुवालेका यह उपकार भी सहन कर लिया था। जब प्रभु वहांसे चलकर दूसरे गांवमें आये तो वहां एक "खड़गवैद्य" रहता था। उसने प्रभुकी कांतिको निस्तेज देखकर यह निश्चय किया कि इनको कोई शारीरिक पीड़ा है। अनुसंधान करनेसे उसे उन कीलोंका पता चल गया, उसने सिद्धार्थ सेठकी सहायतासे उन कीलोंको बाहर खींचलीं। कहा जाता है कि उस समय प्रभुके मुखसे एक भयंकर चीख निकली !!! कठिनसे कठिन उपसर्गोंको सहन करते समय उन्होंने एक भी कायरताका ठण्डा श्वास न लिया था, किन्तु इस अन्तिम उपसर्गमें ऐसा प्रतीत होता है कि उनके उपशांत मोहनीय कर्मकी कोई प्रकृति अव्यक्त भावसे उदय होगई, जिसके कारण देह भावका भान होनेसे चीखका निकलना संभव हुआ !

कैवल्य प्राप्ति।

वैशाख सुदी दशमीके दिन, दिनके पिछले प्रहर विजय मुहूर्तके अन्दर, जंभीक नामक गांवसे बाहर, रंजु नदीके किनारेपर वैयावृत्य नामक मंदिरके सामने शालीवृक्षकी छाहमें, इतनी कठिन तपस्याके फलस्वरूप ध्यानावस्थित प्रभुको सर्व ज्ञानोंमें श्रेष्ठ केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। चन्द्रहस्तोत्तरा नक्षत्र था, सुन्दर समयमें विजय मुहूर्तके अन्दर प्रभुके चारों घातिया कर्म "ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, एवं अन्तराय" जीर्ण रस्सीके समान टूट गये। ज्ञान स्वर्ण अपनी पूर्ण दीप्तिके समान चमकने लगा। भगवानको सत्य सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हुई। उस समय स्वर्ग उत्साहित हो उठा, समस्त संसार आनन्दसे आलोकित हो उठा।

मनुष्य जीवनका लोक-परलोक सुधारने एवं दुखमय जीवनको सुखमय बनानेवाली संसारमें कोई श्रेष्ठ वस्तु है तो वह ज्ञान ही है। इसी ज्ञानके अभावसे संसार अज्ञानके अन्धेरे गर्तमें गोते लगाता रहता है एवं नानाप्रकारके संकट सहता रहता है। इसी ज्ञानके अभावसे दुःख, संकट, तृष्णा, व्यथा आदि दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। इसीके अभावमें मनुष्य-मनुष्यपर अत्याचार करता है। प्राणी-प्राणियोंका भक्षण करता है। कोई भी अत्याचार करनेमें कमी नहीं रखता। इसी ज्ञानके अभावमें जीव जन्म-जन्मान्तर अनेकों कष्ट सहते हुए संसार-

रूपी अटवीमें भ्रमण करता रहता है। आज जो संसारमें कलह, राग, द्वेष आदिके दृश्य दिखाई देरहे हैं यह सब ज्ञानहीकी कमी है। क्योंकि अज्ञान ही मनुष्य जातिका परम शत्रु है, एवं ज्ञान हमारा वास्तविक सच्चा मित्र है। उसी ज्ञानकी प्राप्ति वीर प्रभुको कठिन तपश्चर्याके पश्चात् हुई और तपश्चर्याके फलस्वरूप ६६ दिनके उपरांत उनकी वाणी खिरी।

चतुर्विध संघकी स्थापना ।

जिस समय वीर प्रभुको कैवल्य प्राप्ति हुई थी, उस समय नियमानुसार इंद्रका आसन कम्पायमान हुआ, जिससे उसने प्रभुको कैवल्य प्राप्तिका अनुमान किया । इस शुभ समाचारके ज्ञात होते ही समस्त देवता अत्यंत हर्षित हो वहां आये । तथा हर्षोन्मत्त हो कोई नाचने लगे, कोई आनंदसे उन्मत्त हो कूदने लगे, कोई घोड़ेकी भांति हिनहिनाने लगे, कोई हाथीके समान चिंघाड़ने लगे । तात्पर्य यह है कि वे सब हर्षोन्मत्त हो मनमानी क्रीड़ायें करने लगे ।

कैवल्यज्ञानकी प्राप्तिमें जैन शास्त्रकारोंने जिस उत्सवकी विवेचना की है वह बड़ा मनमोहक है । उसके अंदर तत्वज्ञानका रहस्य छिपा हुआ है । उसके अन्दर साम्यवादका अलौकिक तत्व है ।

पश्चात् देवताओंने बारह दरवाजोंवाला समवशरण मण्डप बनाया । वीर प्रभुने जानते हुये भी रत्नसिंहासन पर बैठ कर सर्व विरतिके योग्य नहीं है—अपना कल्प जानकर उस समवशरणमें बैठ कर उपदेश दिया ।

भगवान्का उपदेश मनुष्यजातिको श्रवण करानेके लिये, जिस समवशरणकी रचना की हुई थी, वह बहुत ही भव्य था । मण्डपकी सजावटमें किसी प्रकारकी त्रुटि न कीगई थी । उसके अन्दर और बाहर अनेक विभाग किये गये थे, जिसके भिन्न भिन्न विभागोंमें

देवता, नर, नारी, पशु, पक्षियोंके बैठनेका भी सुन्दर स्थान था। भगवान् एक स्वर्ण व्यासपीठपर बनाये हुये कमलपर बिराजमान थे। उनके मुखसे जो उपदेश ध्वनित होता था, उसे सर्व देवता, नर, नारी, यहांतक कि पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी भाषामें समझते थे। और वैर अभिमान छोड़कर बैठे थे। हिंसक पशुओंने हिंसावृत्तिका त्याग कर दिया था। मानों वैरभाव उन्हें कभी छू ही न गया हो।

उस सभामें यह विशेषता थी कि गरीब, अमीर, ऊच्च, नीच सब ही मनुष्य एक-समान समझे गये थे। ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, सब समानभावसे पारस्परिक विद्वेषको भूलकर एक साथ उस उपदेशको सुननेके अधिकारी समझे गये थे, महावीरके अनन्त व्यक्तित्वके प्रभावसे हिंसक वृत्तिको छोड़कर अपने प्रतिद्वन्दी पशुओंके प्रति प्रेमभाव रखते हुए सभाके मध्यमें उपदेश सुननेके इच्छुक थे। वीर प्रभुकी करुणा प्रवृत्तिकी उच्चताके फलस्वरूप तथा उसके दिव्य प्रभावसे पशुओंने हिंसक वृत्तिका त्याग कर दिया था। क्षमा, समता, एवं दयाकी पवित्र धाराएँ उसी समयमें उपस्थित जनसमुदायके हृदयोंमें शतधार एवं सहस्रधारसे प्रवाहित हो रहीं थीं।

कहा जाता है कि भगवानका पहिला उपदेश निरर्थक गया और उपकारके योग्य लोगोंका वहां अभाव देख प्रभुने अन्यत्र विहार किया।

वीर भगवानका उपदेश।

वीर प्रभु उस सत्यका सन्देश जिसे उन्होंने कठिन तपश्चरणके पश्चात् प्राप्त किया था, समस्त विश्वको देने लगे। उन्होंने विश्वकल्याणार्थ उपदेश देना प्रारम्भ किया। उन्होंने यह घोषणा की कि संसारका प्रत्येक प्राणी जो अशान्ति, अज्ञान, एवं अत्यन्त शुद्ध ज्वालामें भस्म होरहा हो, वह मेरे उपदेश और मेरे धर्म द्वारा सुख प्राप्त कर लाभ उठा सकता है। अज्ञानके चक्रमें छटपटाता हुआ प्रत्येक जीव, वह तिर्यंच हो या मनुष्य, आर्य हो या म्लेच्छ, ब्राह्मण अथवा शूद्र, पुरुष हो अथवा स्त्री, मेरे उदार झण्डेके नीचे आकर अपनी पिपासाको बुझा सकता है।

उनकी इस घोषणाके प्रचारित होते ही सहस्रों सत्यके भूखे प्राणी उनकी शरणमें आने लगे। वे भी आये जो मोक्षके इच्छुक थे, वे भी आये जो अज्ञान चक्रमें दुःखित होकर संसाररूपी अरवीमें भटक रहे थे। वीर प्रभुकी उदार आत्माने सबको सान्त्वना देकर अपने दिव्य उपदेशामृतसे सबका समाधान किया।

उन्होंने धर्मकी सत्ता अपने हाथमें नहीं रक्खी थी। वे किसी भी व्यक्तिको सत्यका स्वरूप बतला देते थे। जिसके हृदयको अच्छा लगता और मनमें जान जाता वही उनका शिष्य बन जाता था, जो उनके कथनको मानकर उसपर चलता तथा उसके कथनानुसार चरि-

त्रका पालन करता। स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र चाहे जो होता, उसीको वे शिष्यकी भांति ग्रहण कर लेते थे।

इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि लाखों मनुष्य ब्राह्मणोंके पंजोंमेंसे निकलकर उस उदार धर्मकी शरण लेने लगे। समाजके अंदर मनुष्यत्वसे रहित जो निष्ठुर अत्याचार होते थे, वे बन्द होगये। यज्ञकी वेदीपर लाखों पशुओंका काटा जाना भी बन्द होगया। एवं जो गगनभेदी करुण-चित्कार भारतकी पवित्र भूमिसे निकलकर मनुष्यत्वके हृदयको विदीर्ण कर रही थी, वह बन्द होगई। वर्णाश्रम धर्मका स्वांग मिट गया, जातिभेदकी दुष्ट प्रथाका भी करीब–करीब नाश हो गया। साम्यवादकी दुन्दुभी बजने लगी। क्रांतिरूपी प्रचण्ड सूर्यके तेजका अस्त हो गया, एवं उसके स्थानपर समाजमें शीतल चंद्रिकासे युक्त शांतिचन्द्रका उदय होगया। भारतवर्षके इतिहासमें फिरसे एक स्वर्णयुगके उपस्थित होनेका अवसर आया।

एक उपदेश उनका "अपापा" नामक नगरीमें हुआ। उस पुरीके नजदीक महासेन नामक वनमें देवताओंने समवशरणकी रचना की थी। उस समवशरणमें पूर्वके द्वारसे प्रभुने प्रवेश किया। पश्चात् बत्तीस धनुष ऊंचे चैत्य वृक्षको तीन प्रदक्षिणा दे "तीर्थाय नमः" ऐसा कह प्रभुने अर्हंत धर्मकी मर्यादाका पालन किया। तदनुसार वे पादपीठ युक्त सिंहासन पर बैठे। उस समय देवताओंने चारों दिशाओंमें भी प्रभुके प्रतिरूप स्थापित किये जिससे चारों दिशावाले मनुष्य प्रभुके भलीभांति दर्शन कर कृतार्थ होसकें तथा उपदेशको सुन सकें। उस

अवसर पर सब देवता, मनुष्य, स्त्रियां, पशु, पक्षी आदि सब अपने-अपने नियमित स्थानोंपर बैठकर प्रभुकी ओर एक दृष्टिसे देखने लगे। इसके उपरांत इन्द्रने भक्तिवश हो प्रभुकी एक लम्बी स्तुति की। उनकी स्तुति समाप्त होनेपर प्रभुने सब लोग अपनी २ भाषामें भली प्रकार समझ लें, ऐसी दिव्य वाणी द्वारा उपदेशका प्रारम्भ किया—

"यह संसार समुद्रके समान दारुण है, एवं वृक्षके बीजकी भांति उसका मूल कारण कर्म ही है। अपने किये हुए कर्मोंसे विवेक रहित होकर प्राणी कुआ खोदनेवालेके समान अधोगतिको प्राप्त होता है। एवं शुद्ध हृदयवाले व्यक्ति अपने अच्छे कर्मोंसे उपार्जित किये हुए परिणामों द्वारा ऊर्ध्व गतिको पाते हैं। अशुभ कर्मोंका मूल कारण "हिंसा" है, इसलिये हिंसाका त्याग करना उचित है। सदैव अपने ही प्राणोंकी समान दूसरेके प्राणोंको समझकर प्रत्येक जीवके प्राणोंकी रक्षार्थ तत्पर रहना चाहिए। आत्मपीड़ाके समान दूसरे जीवकी पीड़ाको समझकर उसके दूर करनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको कभी असत्य न बोलना चाहिए। मनुष्यके वहिः प्राणके समान किसीका बिना दिया हुआ द्रव्य लेना भी उचित नहीं है, क्योंकि बिना दिये किसीका द्रव्य लेना बाह्य दृष्टिसे उसके प्राण हरण करनेके समान है। संसारके समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझना चाहिए एवं उनसे प्रेमका व्यवहार रखना चाहिए। जो व्यक्ति अपने धर्मसे भ्रष्ट हो गया है, उसे प्रेम-भावसे समझाकर, उसका संदेह मिटाकर पुनः धर्मकी ओर प्रवृत्त करो। गिरे हुएको उठानेकी

आवश्यक्ता रहती है, और सच्चा वीर वही है जो गिरे हुएको उठाता है तथा मार्ग बताता है। प्राणीको जहांतक हो संयमका पूर्णतया पालन करना उचित है, क्योंकि इसमें बहुत बड़ी हिंसा होती है। प्राज्ञ व्यक्तियोंको तो मोक्ष प्रदान करनेवाले ब्रह्मचर्यका ही पालन करना चाहिये। परिग्रहके त्यागका परिमाण करना भी जरूरी है। क्योंकि इसका परिमाण न करनेसे सिरपर बोझसा लदा रहता है एवं अधोगतिको प्राप्त करता है। इन पांचों इन्द्रियोंके सूक्ष्म और स्थूल यह दो भेद हैं। जो व्यक्ति सूक्ष्मका त्याग करनेमें असमर्थ हैं उन्हें स्थूल पापोंका तो अवश्य त्याग करना उचित है। इसके साथ ही साथ राग, द्वेष, कलहका त्याग करना व समता भावको ग्रहण करना चाहिये।

प्रभुका ऐसा दिव्य संदेश सुनकर सर्व उपस्थित जनसमुदाय आनंदमग्न हो उठा, एवं बहुतसे व्यक्तियोंने वीर धर्मको आदर्श धर्म मानकर उसको अपनाया।

वीर प्रभुकी उपदेश देनेकी शैली बड़ी ही उत्कृष्ट ढंगकी थी। उन्होंने दूसरोंके छिद्र शोधने या नीचा दिखानेका कभी प्रयत्न नहीं किया था। विश्वके कल्याणार्थ ही उनके तीर्थंकर पदका निर्माण हुआ था। किन्तु उन्होंने अपना निर्माण सिद्ध करनेके लिये कभी किसीपर किसी प्रकारका अनुचित प्रभाव डालनेका प्रयत्न नहीं किया और नहीं कभी उन्होंने यह इच्छा की कि अपने आचार-विचार छोड़कर कोई मेरे दलमें चला जाय, इसके लिये उन्होंने कभी किसीको प्रलोभित

किसी प्रकारका अनुचित प्रभाव डालनेका प्रयत्न नहीं किया और नहीं कभी उन्होंने यह इच्छा की कि अपने आचार-विचार छोड़कर कोई मेरे दलमें चला आय, इसके लिये उन्होंने कभी किसीको प्रलोभित नहीं किया। उनकी उपदेश पद्धति शान्त, सरल, रूचिकर, मर्मस्पर्शी, विमुख हृदयोंपर भी अपना प्रभाव डालनेवाली थी। समस्त दुनियां मेरे झण्डेके नीचे आजाय यह विचार उन्होंने स्वप्नमें भी नहीं किया था। क्योंकि वे भली-भांति जानते थे कि इस प्रकारकी इच्छा करना भी मनुष्य-हृदयका अज्ञान प्रकट करनेवाला नीचे दर्जेका मनोविकार है। वे जानते थे कि संसारमें आज पर्यन्त कभी कोई भी समय ऐसा उपस्थित न हुआ है न होगा कि किसी भी महात्माकी विना किसी मतभेदके दुनियां अनुयायिनी हुई हो और न भविष्यमें ऐसा होनेकी सम्भावना ही है।

उनका समुदाय सदैव अन्य समुदायोंसे संख्यामें कम रहता था। किन्तु इसकी उन्हें चिन्ता न थी। वे तो केवल अपने शरणमें आये हुए व्यक्तियोंको प्रेम-भावसे धर्मका तत्व समझाते थे। यदि वह उपदेशको ग्रहण कर उसपर चलता तो उन्हें किसी प्रकारका हर्ष, तथा न ग्रहण करनेपर खेद न होता था। उन्होंने संसारके सम्मुख सुखके साधनोंकी एक लड़ी तैयार करके रख दी थी। जिसकी इच्छा होती वह लाभ लेता, जिसकी न होती वह देखकर चलदेता, किन्तु उन्ह हर्ष-विषाद न होता था। उन्होंने सदैव ऐसे प्रयत्न किये जिससे मनुष्यजातिको सत्यकी ओर रूचि हो, एवं प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें सत्यकी छाप बैठ

जावे। वे परिणामदर्शी थे। वे जानते थे कि समाजको केवल अधिक संख्यामें बढ़ानेसे ही अधिक लाभ न होगा।

अनुयायियोंकी संख्या बढ़ाना तो उनका गौण लक्ष्य था। उनका प्रधान लक्ष्य तो लोकहित ही था। उन्होंने सदैव अपने सुखद-सिद्धांतोंको जनताके हृदयमें गहरे पैठा देनेका प्रयत्न किया। इसी-लिये अन्य अनुयायियोंकी संख्याकी अपेक्षा इनके अनुयायियोंकी संख्या कम थी। किन्तु जितने भी थे पक्के थे और इसका यही कारण है कि केवल संख्याके बलमें श्रद्धा रखनेवाले अन्य अनुयायि भी आज भारतवर्षके किसी भी कोनेमें दृष्टिगत नहीं होते। और जैन धर्म कई विपत्तियोंके समूहसे टकराते हुये भी आज अपने बारह लाख अनुयायी रखता है। इसका मुख्य कारण केवल भगवानकी उपदेश-शैली ही थी। यदि कालके चक्रमें पड़कर हमारे ही द्वारा इस शैलीमें विकार उत्पन्न न होते तो आज जैन साहित्य तथा जैन समाजकी दशा कुछ अन्य ही होती।

वीर प्रभुका पहला उपदेश तो निरर्थक गया। बादके उपदेशोंसे उनके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ना प्रारम्भ हुई। उनका ४३ वर्षसे लेकर ७२ वर्ष तकका दीर्घ जीवन केवल लोक-कल्याणके हितार्थ गया। उनके किये हुए कार्योंकी नियमावली इसप्रकार है:—

(१) जाति पांतिका भेद-भाव रक्खे विना प्रत्येक व्यक्तिके लिये शूद्र अति शूद्र तकके लिये भी सन्मार्ग एवं गुरुपदका रास्ता

खोलना। श्रेष्ठताका आधार जन्म नहीं बल्कि गुण, एवं गुणोंमें भी पवित्र जीवनकी महत्ता स्थापित करना।

(२) पुरुषोंकी भांति स्त्रियोंके विकाशके लिये भी पूर्ण स्वतंत्रताकी योजना करना। विद्या तथा आचार दोनोंमें स्त्रियोंकी पूर्ण योग्यताको मानना तथा उनके लिये गुरु—पद अध्यात्मिकका मार्ग खोल देना।

(३) लोक भाषामें तत्वज्ञान एवं आचारका उपदेश करके केवल विद्वद्गम्य संस्कृत भाषाका मोह घटाना एवं योग्य अधिकारीके लिये ज्ञान प्राप्तिमें भाषाका अन्तराय दूर करना।

(४) ऐहिक और पारलौकिक सुखके लिये होनेवाले यज्ञ आदि कर्म—कांडोंकी अपेक्षा संयम तथा तपस्याके स्वावलम्बी तथा पुरुषार्थ-प्रधान मार्गकी महत्ता स्थापित करना एवं अहिंसा धर्ममें प्रीति उत्पन्न करना।

(५) त्याग एवं तपस्याके नामरूप शिथिलाचारके स्थानपर सच्चे त्याग एवं सच्ची तपस्याकी प्रतिष्ठा करके योगके महत्वका वायु—मण्डल चहुंओर उत्पन्न करना।

उपरोक्त बातें तो उनके साधारण उपदेशमें सम्मिलित थीं। तत्वज्ञान सम्बन्धी बातोंमें वीर प्रभु "अनेकान्त" व "सप्तभंगी स्याद्वाद" नामक प्रसिद्ध फिलासफीके जन्मदाता थे।

वीर प्रभुके अनुयायियों और शिष्योंमें सभी जातिके लोगोंका उल्लेख पाया जाता है। इन्द्रभूति आदि उनके ग्यारह गणधर ब्राह्मण

थे। उदायी, मेघकुमार आदि क्षत्रिय थे। शालिभद्र आदि वैश्य थे, और मोताराज, हरिकेशीं जैसे अति शूद्र भी प्रभुकी दी हुई दीक्षाका पालन कर उच्च पदको प्राप्त हुए थे। साध्वियोंमें चन्दनबाला क्षत्रिय थी, देवानन्दा ब्राह्मणी थी। गृहस्थ अनुयायियोंमें उनके मामा वैशालीपति चेटक, मगध नरेश श्रेणिक एवं उनका पुत्र कोणिक आदि अनेक क्षत्रिय भूपति थे। आनन्द, कामदेव आदि प्रधान उपासकोंमें "शकडाल" कुम्हार था। और शेष ९ वैश्य थे। "ढंक' कुम्हार होनेपर भी प्रभुका दृढ़ एवं समझदार उपासक था। खंधक, अम्बड़ आदि अनेक परिव्राजक एवं सोमिल आदि अनेक ब्राह्मणोंने भगवानका अनुसरण किया था। गृहस्थ उपासिकाओंमें रेवती, सुलभा और जयन्तिके नाम विख्यात हैं। जयन्ति जैसी भक्त थी वैसी ही विदुषी थी। वह स्वतंत्रता पूर्वक भगवानसे शङ्का समाधान करती थी।

वीर धर्ममें स्त्रियोंके अधिकार।

बहुतसे प्राचीन विद्वानों एवं लेखकोंने स्त्रीको नर्ककी खान तथा धार्मिक उन्नतिमें उन्हें बाधक बतलाया है। यहीं तक नहीं बल्कि सांसारिक बन्धनका कारण बतलाया है। कहींर पर तो स्वार्थी पुरुषोंने स्त्रियोंको विद्याध्ययन, पूजा, प्रक्षाल आदिकी अनधिकारिणी बताकर स्त्रीजातिके प्रति घोर अन्याय किया है। स्वार्थसिद्धिके लिये ही उनकी शिक्षामें बाधा दीजाने लगी तथा उन्हें मूर्ख रखकर स्वार्थी पुरुषोंने उनके साथ पशुओं जैसा निंद्य व्यवहार करना शुरू कर दिया। यहीं तक नहीं, मन—माने ग्रंथोंमें उनकी निन्दा कर डाली। एक स्थानपर स्त्री निन्दा करते हुये एक महाशय लिखते हैं कि—

आपदामाकरो नारी नारी नरकवर्तिनी।
विनाशकारणं नारी नारी प्रत्यक्ष राक्षसी।

बलिहारी है इस विद्वेष, और नीचताकी। जिस भांति पुरुष स्त्री जातिके प्रति ऐसे श्लोक रच सकते हैं, उसी प्रकार नारियां भी यह लिख सकती थीं, और लिख सकती हैं कि:—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः।
पुरुषः पापानां मूलं पुमान् प्रत्यक्ष राक्षसः॥

धर्मशास्त्रोंमें जिन विद्वानोंने नारी निन्दा की है वे व्यक्तिके जीवनके लिये ऐसी बातें कह सकते थे, और शायद उनका लक्ष्य भी यही हो। किन्तु गृहस्थावस्थाके लक्ष्यबिन्दुसे ऐसा कहीं भी नहीं

कहा गया है बल्कि इसको उन्होंने भी माना है कि विना सुयोग्य पत्निके गृहस्थाश्रम अधूरा है, और गृहिणी विना पुरुष पूर्णतया गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंका पालन नहीं कर सकता, यह शास्त्रकारोंने भी माना है। वीर प्रभुके समयमें गृहस्थाश्रमके अन्दर स्त्रीका उतना ही सम्मान था जितना कि आजकलके पाश्चात्य समाजमें माना जाता है। वीर प्रभु और भगवान पार्श्वनाथ जो जीवनके आदर्शकी अन्तिम सीढ़ीतक पहुंच गये थे उनको भी यह बात खटकती थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि:—

शिशुत्वं स्त्रण्यं वा यदस्तु तत्तिष्ठतु तदा।
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥

अर्थात्—बालक, स्त्री चाहे जो हो, वही पूज्यनीय और गुणका पात्र है।

उन्होंने बतलाया था कि पुरुषोंकी भांति स्त्रियां भी पूजा आदि कर सकती हैं। पुरुषोंकी भांति स्त्रियां भी श्राविकाएं होसकती हैं तथा श्रावकोंके व्रतोंका पालन कर सकती हैं। पुरुषोंकी भांति स्त्रियां भी धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन कर सकती हैं, उन्हें भी यह अधिकार है। पुरुष मुनि होसकता है तो स्त्रियाँ आर्यिका होकर पंच महाव्रतोंका पालन कर कल्याण कर सकती हैं। धार्मिक अधिकारोंकी भांति सामाजिक अधिकारोंमें भी स्त्रियोंका अधिकार समान है। पुत्रकी ही भांति वे भी पिताकी सम्पत्तिकी उत्तराधिकारी हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस कालमें समाजके अन्दर शूद्रोंकी

भांति स्त्रियों पर भी अत्याचार होते थे और उनके अधिकारोंको कुचल दिया गया था। सम्भवतः इसलिये वीरप्रभुको स्त्रियोंके लिये ऐसे नियम बनाने पड़े होंगे। वर्तमानमें भी वीरप्रभुके अनुयायी जैनसमाज अपने कर्तव्यको भूल गया है, अपने धर्मकी आज्ञाको बिसर गया है। वह धार्मिक आज्ञाओंकी अवहेलना कर उसके विपरीत मार्गको भी धर्म ख्याल कर रहा है। समाजमें सम्पत्तिका अधिकारी केवल पुत्र ही समझा जाता है, कन्याका कोई अधिकार नहीं। यह शृंखला न जाने क्यों उत्पन्न हुई है? क्या पुत्रीके लिये माता कम कष्ट उठाती है? वह उसको ९ मास गर्भमें नहीं रखती? क्या उसको उसके पालन-पोषणमें पुत्रके समान कष्ट नहीं उठाना पड़ता? क्या वह उसके हृदयका टुकड़ा नहीं है? क्या उसमें जीव नहीं है? समाजको विचारना चाहिये कि वह जन्मसे पुत्रियोंको सम्पत्तिकी अनधिकारी समझ कर स्त्री जातिके प्रति अन्याय करता है। जैनशास्त्रोंने तो इस विषयमें स्पष्ट कहा है कि—

" पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः। "

(आदिपुराण पर्व ३८)

अर्थात्—पुत्रोंकी भांति पुत्रीको भी समभाग बांटना चाहिए। जैनधर्म पुरुष एवं स्त्री दोनों ही को समान स्वतंत्र मानता और ख्याल करता है। जो लोग यह ख्याल करते हैं कि स्त्रीको हिन्दूशास्त्रोंमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य नहीं दिया गया है, उनकी यह विचारणा बड़ी भ्रम-मूलक है। जैन कानूनके अनुसार स्त्रियोंको (विधवाओंको पतिकी सम्पत्तिका अधिकार) कन्याओंको पुरुषोंके समान ही सर्व अधिकार

दिये गये हैं। जैनधर्ममें पतिकी सम्पत्तिकी अधिकारी विधवा स्त्री है।

नोट—अधिक ब्यौवरा जाननेके लिये स्त्रियोंको "विद्यावारिधि जैनदर्शनदिवाकर पं० चंपतरायजी जैन बैरिस्टर कृत 'जैन लॉ' नामक ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिये।

जैनधर्ममें स्त्रियोंका सम्मान पति बराबर करते थे। जब रानियाँ महारानियाँ सभामें आतीं थीं तो राजामहाराजा उठकर उनका सम्मान करते थे और उनको अपना अर्धासन बैठनेको देते थे। जिस समय रानी त्रिशला अपने सोलह स्वप्नोंका फल पूछने गईं थीं तो राजा सिद्धार्थने उनको आदर सहित अपना अर्धासन दिया था और जब मैनासुंदरीकी माता दोनों कन्याओं सहित दरबारमें पहुंची थीं, तब राजा पहुपालने रानीको अर्धासन दिया था। इसी प्रकार जब राजा श्रीपाल बारहवर्षके बाद लौटकर आये तो मैनासुंदरीको अर्धासनपर बिठाकर रानियोंका परिचय और अपनी सर्व कहानी बताई थी कि मैंने इस ही प्रकार इन राजकन्याओंसे विवाह किया है। ऐसे ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण जैन शास्त्रमें भरे पड़े हैं, जिनमें स्त्रियोंके सम्मान और अर्धासन देनेकी बातें लिखी हुई पाई जाती हैं।

वीर प्रभुके उदार हृदयने केवल स्त्री–पुरुषको समान स्वतंत्रता देकर ही विश्राम न लिया बल्कि प्राणीमात्र चर अचर सबको समान स्वतंत्रतामें प्रधान करनेवाले सर्व प्रथम महापुरुष वीरप्रभु ही थे। उन वीर प्रभुने संसार एवं आत्माकी स्वतंत्रताके लिये अपने जीवनका बिसर्जन कर दिया था।

उनके आश्रममें जितना दर्जा श्रमणका माना जाता था, उतना ही आर्यिकाका भी माना जाता था। पुरुष—स्त्रीकी रक्षार्थ उन्होंने भिन्न भिन्न आचारोंका निर्माण किया था। वीर प्रभु भलीभांति जानते थे कि स्त्रीत्व और पुरुषत्व केवल कर्मानुसार प्राप्त होता है। किन्तु उनकी शक्तियां समान होती हैं। जिसप्रकार एक पुरुषकी अपेक्षा दूसरे पुरुषकी शक्तिमें अधिकता—न्यूनता पाई जाती है, उसी प्रकार स्त्री—पुरुष नामक शक्तिमें न्यूनता अधिकता है। किन्तु स्त्री सुकृत्यों द्वारा अपने कर्म काटकर सुखी निर्वाणास्त होसकती है। उन्होंने विश्व-हितके लिये जिन पवित्र सिद्धान्तोंका उपदेश दिया था वे संक्षिप्तमें इसप्रकार हैं:--

(१) सांसारिक समस्त जीव शक्तिकी अपेक्षासे समान हैं, और प्रायः सभी योग्य कारण—सम्यग्दर्शन ज्ञान तथा अपने अच्छे शुद्ध आचार-विचार द्वारा सिद्धि एवं शक्तिको प्राप्त कर सकते हैं।

(२) सब जीव अपने ही परिणामोंसे एवं कृत्योंसे अपने सुख-दुःखका बीज बोते हैं। शुभ (पुण्यरूप) परिणामोंसे सांसारिक सुख और अशुभ (पापरूप) परिणामोंसे सांसारिक दुःखकी प्राप्ति होती है। पाप और पुण्यसे छुटकारा पाकर जीवोंको पूर्ण सुख (निर्वाण) की प्राप्ति होजाती है।

(३) जीवोंके सुख-दुःखकी प्राप्तिमें किसी भी अधिकारी शक्तिकी आवश्यकता नहीं है। जीवसे भिन्न ईश्वर या अन्य किसी शक्तिको उसका नियंत्रण कर्ता मानना उसकी स्वाभाविक शक्तिसे

इन्कार करना जीवत्वको निष्प्रयोजन बना देना है।

(४) दुःखका मुख्य कारण पाप है जो दूसरोंके और अपने परिणामोंका किसी भी रूपमें घात करनेसे होता है।

(५) संसारके सर्व जीवोंके प्रति उदारता रखना तथा उनको सुख पहुंचाना प्रत्येक जैन धर्मावलम्बीका प्रमुख कर्तव्य है।

(६) उन्होंने बतलाया कि "आत्मवत् सर्वभूतेषु" अर्थात् संसारके स्त्री-पुरुष, चर-अचर, सर्व प्राणियोंको तुम अपने समान समझो, उनसे स्नेहका व्यवहार रखो तथा उनकी आत्माकी समान समझो।

हम यदि पुरुषोंकी स्वतंत्रताके सर्व हकोंको मानते हैं, तो फिर स्त्रियोंके अधिकारोंको क्यों स्वीकार न करें? जैन धर्म स्त्रियोंको मात्र ग्यारह अंगकी धारी होना बतलाते हैं:—

द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघश्वरो गणी।
एकादशांगभृज्ञाताऽऽर्यिकापि सुलोचना॥

(हरिवंशपुराण सर्ग १२)

अर्थात्—जयकुमार भगवानका द्वादशांगधारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंगकी धारक आर्यिका हुई। अस्तु।

विशाल ज्ञानी वीरप्रभु स्त्रियोंके महत्वको और अधिकारोंको भलीभांति जानते थे, इसीलिये उन्होंने स्त्रियों और पुरुषोंके अधि-कारोंको समान समझा था, एवं स्त्री पुरुषमें एक ही आत्मा है यह बताया था।

उनके धर्ममें स्त्री पुरुषोंका समान अधिकार था। वीर धर्मके

नेता वीरप्रभुने पुरुष एवं स्त्री दोनोंको धर्मका अधिकारी बताया था। दोनों ही अपने त्याग, तप, संयम द्वारा सद्गति (उच्चगति) को प्राप्त हो सकते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया था और इसीके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ सिद्धान्त ग्रंथोंके साथ साथ जिन प्रतिमाका पूजाप्रक्षाल भी किया करती थीं। अंजनाने अपनी सखी वसन्तमालाके साथ सासके गृहसे निकाल देनेपर गुफामें बिराजमान जिनमूर्तिका पूजनप्रक्षाल किया था। मदनवेगाने वसुदेवके साथ सिद्धकूट चैत्यालयमें जिन पूजा की थी। मैनासुन्दरी तो नितप्रतिदिन नियमपूर्वक पूजाप्रक्षाल करती थी और अपने कुष्टि पति श्रीपालका कुष्ट गंधोदकके प्रभावसे क्षणमें दूर कर दिया था। ७०० वीरों सहित पतिके कुष्टको दूर किया था। शास्त्रों एवं जैन ग्रन्थोंमें स्त्रियों द्वारा पूजा प्रक्षाल किये जानेके अनेकों दृष्टांत पाये जाते हैं।

हर्षकी बात है कि वर्तमानमें भी स्त्रियां जैन समाजके अन्तर्गत हर्षपूर्वक पूजाप्रक्षाल करती हैं. किन्तु खेद है कि वर्तमानमें भी कुछ लोग स्त्रियोंको इस धर्म कृत्यकी अनधिकारी वताते हैं। उनका ऐसा ख्याल करना भ्रम—मूलक है। क्योंकि वीर प्रभुके समयमें स्त्रियां इन धार्मिक कार्योंको करती थीं. पूजा प्रक्षाल ही नहीं वे मुनियोंको हाथसे आहार देती थीं। कई महीनेका पारना करनेके उपरान्त वीरप्रभुको चन्दनाने आहार दिया था। वनमें सीताजी रामचन्द्रजी सहित मुनियोंको आहार दिया करती थीं, और वर्तमानमें भी स्त्रियां मुनियोंको आहार देती हैं। जो स्त्रियां आर्यिका होसकती हैं, वे पूजा-प्रक्षालकी

अधिकारी कैसे नहीं होसकती हैं? पूजा-प्रक्षाल तो आरम्भ होनेके कारण कर्मबंधका कारण है, इससे तो संसार (स्वर्ग आदि) में ही चक्कर लगाना पड़ता है जब कि आर्यिका होना संवर और निर्जराका कारण है, जिससे क्रमशः मोक्षकी प्राप्ति होती है। जब स्त्री मोक्षके कारणभूत संवर निर्जरा करनेवाले कार्य कर सकती हैं तो वह संसारके कारणभूत बंधकर्ता पूजनप्रक्षाल करनेकी अधिकारी न हों यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है।

वीर धर्ममें स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा करना बताया है, सम्मान करना सिखाया है, और हमें समान अधिकार दिये हैं, स्त्रियोंको धार्मिक स्वतंत्रता दी है। वीर धर्ममें जहां स्त्रियोंका समान आदर है, उनका सम्मान है, वहाँ तुलसीदासजी लिखते हैं:—

"ढोर गंवार शूद्र अरु नारी।
ये सब ताड़नके अधिकारी॥"

स्त्रियोंके लिये तो उन्होंने यह न्याय कर दिया है। उनकी स्त्रीने ही उन्हें धर्मका मार्ग बताया था, उन्होंने इसका नारी जातिको उचित प्रतिकार दिया है! इसके साथ२ क्या पुरुषोंको भी स्त्रियोंकी समानताका ध्यान दिलाना उनका कर्त्तव्य नहीं था?

वीर प्रभुके शासनमें स्त्रियोंका महत्वपूर्ण स्थान था, और ३१८००० इतनी श्राविकाएँ आर्यिकाएँ हुई थीं। तात्पर्य यह है कि अन्य धर्मोंकी अपेक्षा जैनधर्ममें स्त्रियोंका उतना ही ऊच्च स्थान एवं अधिकार है जितना कि पुरुषोंको।

वीर प्रभुके शिष्य और गणधर।

जिस समय "अपापा" नगरीमें समवशरण रचा गया था, और प्रभु उसमें प्रतिष्ठित होकर संसारमें भ्रमण करनेवाले भव्यजीवोंको अपने दिव्य उपदेश द्वारा बोध करा रहे थे, ठीक उचित अवसर पर 'अपापा' नगरीमें "सोमिल" नामक एक धनाढ्य ब्राह्मणके घर यज्ञ था, उसको सम्पन्न करानेके लिये चोवीस वेदके पाठी भारत विख्यात ग्यारह ब्राह्मण बुलाये गये इनके नाम निम्नलिखित थे:—

१—इन्द्रभूति, २—अग्निभूति, ३—वायुभूति. ४—आर्यकाचार्य, ५—सुधर्माचार्य, ६—मण्डीपुत्र, ७—मौर्यपुत्र, ८—अकम्पित, ९—अचलवृत, १०—मैत्रेयचार्य, और ११—प्रमासाचार्य।

ये लोग अपने ज्ञान बल द्वारा समस्त भारतवर्षमें प्रसिद्ध थे। जब समवशरणमें उपदेश सुननेके लिये हजारों देव, नर, नारी उस मार्गसे होकर जाने लगे, यह देखकर इन पण्डितोंने विचारा कि यह सब लोग यज्ञमें आ रहे हैं, और कहने लगे कि इस यज्ञका प्रभाव तो देखो, मन्त्रों द्वारा बुलाये हुए देवता प्रत्यक्ष रूपमें इधर आ रहे हैं। किन्तु जिस समय वे सब वहां दृष्टिपात भी न करते हुए आगे बढ़े तब इनको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि ये सर्व लोग सर्वज्ञ प्रभु महावीर भगवानकी वन्दना करने जा रहे हैं। इन्द्रभूतिने यह वृतान्त सुन मनमें विचारा

कि क्या संसारमें मेरे अतिरिक्त अन्य भी कोई सर्वज्ञ है ? जिसकी वन्दनार्थ ये दौड़े जा रहे हैं, और आश्चर्य तो इस बातका है कि इस पवित्र यज्ञ—मण्डलकी ओर भी इनका मन आकर्षित नहीं होता। संभव है कि जिस ढङ्गका इनका सर्वज्ञ है उसी ढङ्गके ये भी होंगे। यह विचार वह अप्रतिमसा होगया ।

जब प्रभुकी वन्दना कर वे लोग लौटे तो इन्द्रभूतिने उनसे पूछा कि भाई ! तुमने सर्वज्ञ देखा ? कैसा है ? तब उन्होंने उत्तर दिया, कि भाई क्या पूछते हो, उनके गुणोंकी गिनती करना तो गणित शास्त्रकी परिधीसे बाहर है । यह सुन इन्द्रभूतिने सोचा कि यह पाखण्डी तो कोई शक्तिशाली प्रतीत होता है, इसलिये अब शीघ्रतिशीघ्र इसकी पोल खोलना मेरा कर्तव्य है । क्योंकि इसने तो बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धिको भी चक्करमें डाल दिया है । यह विचार वह गर्व सहित पांचसौ शिष्यों सहित पराजित्त करनेके ख्यालसे चला । वहां पहुंचते ही सर्व प्रथम वहांके ठाठ और रचनाको देखकर ही वह स्तंभित होगया, उसके बाद वह अन्दर गया । वीर प्रभु ज्ञानबल द्वारा उसका नाम गोत्र एवं हृदयका गुप्त संशय सब जान गये थे । जो गुप्त संशय उसने कभी किसीपर प्रगट नहीं किया था, उसे वे जान गये । उसे देखते ही प्रभुने अत्यंत कोमल स्वरमें कहा—

"हे गौतम ! इन्द्रभूते ! त्वं सुखेन समागतोसि" वीर प्रभुके मुखसे इन शब्दोंको सुनकर वह और भी आश्चर्यमें पड़ा । किन्तु यह विचार कि मेरा नाम जगतप्रसिद्ध है उसका समाधान किया । सर्वज्ञ तो इन्हें

जब समझना चाहिये जब ये मेरे मनोगत भावोंको प्रगट करदे।

इतनेमें ही वीर प्रभुने कहा कि हे विद्वान्! तुम्हारे हृदयमें "जीव है या नहीं" इस बातका संशय है एवं इसका कारण वेदमें रही हुई "विज्ञान घन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः। समुत्थाय ता येवा नु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति" और सबे अयं आत्मा ज्ञानमयः इत्यादि तथा दमो दानं दया इति दकारत्रयं यो जानाति स जीवः ये ऋचाएं हैं। प्रथम ऋचासे जीवका सर्वथा अभाव प्रकट होता है एवं दूसरीसे जीवका अस्तित्व भी सिद्ध होता है। साधक और बाधक प्रमाणोंके मिलनेसे तुम्हारा मन संशयान्दोलित हो रहा है। इसीलिए तुम भ्रम-जालके गहरे गर्तमें गोते लगा रहे हो। अब मैं तुम्हें इनका वास्तविक अर्थ बतलाता हूं।

"विज्ञानघन" यह आत्माका नाम है। जब आत्मा घटपटादि किसी भी वस्तुको देखती है, तब वह उपयोगरूप आत्मा इन्द्रियगोचर पदार्थोंको देखती सुनती है या किसी भी प्रकारसे अनुभवगोचर करती है। उस समय उन अनुभवगोचर पदार्थोंसे ही "उस" उस उपयोग रूपमें पैदा होती है, एवं उन घटपटादि पदार्थोंके नष्ट हो जानेपर आत्मा उस उपयोगरूपसे नष्ट हो जाती है। इसी ही बातको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि आत्मा घटापटादि भूतोंसे अर्थात् भूत-विकारोंसे ही उपयोगरूप वह आत्मा उत्पन्न होती है; एवं उनके बिखर जानेपर वह उन्हींमें लय हो जाती है।

"न प्रेत्य संज्ञास्ति" प्रथम घटपटादि उपयोगात्मिक संज्ञा थी,

फिर वह स्थिर नहीं रहती। उन पदार्थोंसे हटकर आत्मा अन्यान्य जिन २ पदार्थोंमें उपयोग रूपसे परिणित होती हैं। उन २ पदार्थोंके रूपके अनुसार उसकी नयी संज्ञा वर्तमान होती जाती है।

हे गौतम! आत्माका अस्तित्व है। वह चित्त, चैतन्य, विज्ञान और संज्ञा आदि लक्षणों द्वारा जानी जा सकती है। यदि जीवन नहीं है तो फिर पुण्य और पापका पात्र कौन रह जाता है एवं तेरे इस योग, यज्ञ, दान आदिका कारण क्या हो सकता है?

इस भांति प्रभुने पूर्णतया उसका समाधान कर दिया। इस समाधान तथा प्रभुके जगदद्वैत साम्राज्यको देख इन्द्रभूतिने दीक्षा ग्रहण करली। यह इन्द्रभूति (गौतम) प्रभुके सब प्रथम शिष्य हुए।

इन्द्रभूतिकी दीक्षाका समाचार जान अग्निभूति प्रभुसे शास्त्रार्थ करने आया। उसको देखते ही प्रभुने कहा:—

"हे गौतम गौत्री अग्निभूति! तुम्हारे हृदयमें यह संदेह है कि कर्म है या नहीं? यदि कर्म है तो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अगम्य होते हुए भी वे मूर्तिमान हैं। ऐसे मूर्तिमान कर्म अमूर्तिमान जीवको किस प्रकार बांध लेते हैं? अमूर्तीक जीवको मूर्तिमान कर्मसे उपघात एवं अनुग्रह किस भांति होता है? ऐसा संशय तेरे हृदयमें समाया हुआ है, किन्तु यह सब व्यर्थ है। क्योंकि अतिशय ज्ञानी पुरुषोंको कर्म प्रत्यक्ष ही मालूम होते हैं। परन्तु तुझ जैसे छद्मस्थ व्यक्तियोंको जीवकी विचित्रता देखनेसे एवं अनुमानसे ही कर्म मालूम होते हैं। कर्मसे ही सुख—दुःखादि प्राप्त होते रहते हैं। कर्मानुसार हम फल

पाते हैं, इससे निश्चय ही कर्म है, तू ऐसा समझकर कर्मका होना स्वीकार कर। कर्मोंसे ही अनेकों जीव राज्य—सुख—भोग करते हैं, तथा हाथी अश्व आदि वाहनको प्राप्त करते हैं और हजारों व्यक्तियोंका पालन-पोषण करते हैं, धार्मिक कार्योंमें परिवृत्त होकर महान् पुरुष बनते हैं। उन्हींमें अपने कर्मसे ही बहुतसे ऐसे दीनदलिद्री होते हैं कि जिन्हें पेटभर अन्न भी प्राप्त नहीं होता, उन्हींमें कोई २ अपने कर्मसे भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। एक ही देश, एक ही समय, एक ही परिस्थितिमें व्यापार करनेवाले दो व्यक्तियोंमें व्यापार करनेवाले एक व्यक्तिको अपने कर्मके फलस्वरूप अत्यंत लाभ होता है, एवं दूसरेको इसके विपरीत हानि होती है। यदि तू कर्म नहीं मानता तो इसका क्या कारण है?

इन सर्व कार्योंका मूल कारण कर्म ही है। क्योंकि कारणके विना कार्यमें विचित्रता नहीं आती। मूर्तिमान कर्मका अमूर्तिमान जीवके साथ जो सम्बन्ध है, वह आकाश और घोड़ेसे बिलकुल मिलता जुलता है। जिस भांति नानाप्रकारके उपभोग करनेसे जीवको उपघात और अनुग्रह होता है, उसी प्रकार कर्मोंसे भी जीवका उपघात और अनुग्रह होता है। इस प्रकार वीर प्रभुने उसका संशय मिटाया तब अग्निभूति ईर्षा छोड़ प्रभुका शिष्य बन गया—पांचसौ शिष्यों सहित उसने दीक्षा ग्रहण की।

इसके पश्चात् वायुभूति प्रभुके पास आया, उसको देखकर वीर प्रभुने कहा—वायुभूति! तुझे जीव और शरीरके विषयमें बहुत भ्रम है।

प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ग्रहण न होनेके कारण जीव शरीरसे भिन्न नहीं मालूम पड़ता। इसलिये जलमें उत्पन्न हुए झागोंकी भांति वह शरीरमें उत्पन्न और नष्ट होता है, तेरा जो यह आशय है, वह मिथ्या है। क्योंकि इच्छा आदि गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे जीव एक दृष्टिसे प्रत्यक्ष है, एवं उसे अपना अनुभव स्वयं ही होजाता है। यह जीव देह और इन्द्रियोंसे भिन्न हैं। और इन्द्रियां जब नष्ट होजाती हैं, तब भी वह इन्द्रियोंके द्वारा पूर्वमें भोगे हुए भोगोंको स्मरण करता है। इस-प्रकार उसका संशय मिटाकर प्रभुने वायुभूतिको भी अपने धर्ममें प्रवृत्त कर दीक्षित किया।

इनके पश्चात् आर्यव्यक्त, सुधर्माचार्य, आदि सर्व पण्डितोंने आकर प्रभुके दर्शन किये। प्रभुने उन सबका समाधान कर सबको अपने धर्ममें प्रवृत्त कर दीक्षित किया।

इसी अवसरपर शतनिक राजाके यहां चन्दनाने आकाश मार्गसे देवताओंको जाते देखकर अनुमान बलद्वारा प्रभुको केवलज्ञान होगया ऐसा जान लिया। यह समाचार जान उसके मनमें व्रत लेनेकी उत्कृष्ट अभिलाषा हुई। उसकी यह इच्छा देख किसी समीपवर्ती देवताने उसे प्रभुकी समवशरण सभामें पहुंच दिया। उसने प्रभुके समीप जाकर तीन प्रदक्षिणा दे दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रदर्शित की। उसकी इच्छा जान प्रभुने चन्दनाको अन्य कई स्त्रियों सहित दीक्षा दे दी।

इसके पश्चात् श्रावक एवं श्राविका धर्ममें जिन लोगोंने दीक्षित होनेकी इच्छा की उन्हें अपने धर्मका उपदेश देकर धर्ममें प्रवृत्त किया।

इस भांति प्रभुने मुनि, अर्जिका, श्रावक एवं श्राविका इसप्रकार चतुर्विध संघकी स्थापना की।

तदनन्तर प्रभुने इन्द्रभूति आदि गणधरोंको ध्रौव्य उत्पादक और व्ययात्मक ऐसी त्रिपदी कह सुनायी। उस त्रिपदीके लिये उन्होंने आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, ठाणांग, समवायाङ्ग, भगवती अङ्ग, ज्ञाताधर्म कथा, उपासक अन्त कृत, अनुत्तरोपपादिक दशा, प्रश्न व्यांकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद इसप्रकार बारह अंगोंकी रचना की, फिर दृष्टिवादके अन्तर्गत चौदह पूर्वोंकी रचना की। इस रचनाके समय सात गणधरोंकी सूत्र-वांचना परस्पर भिन्न २ होगई। एवं अकम्पित तथा अचल भ्राता एवं मैत्रेय और प्रभासकी वांचना समान हुई। इस-लिये प्रभुके ग्यारह गणधर होनेपर भी चार गणधरोंकी वांचना दो प्रकारकी होनेके कारण गण (मुनि समुदाय) नौ कहलाये।

वीर प्रभुके इसप्रकार ग्यारह गणधर, नौ वृन्द और ४२०० श्रवण थे। इसके अतिरिक्त अन्य बहुतसे श्रमण और अर्जिकाएँ थीं, जिनकी संख्या क्रमसे चौदह हजार एवं छत्तीस हजार थीं। श्रावकोंकी संख्या १५००० थीं, और श्राविकाओंकी संख्या ३,१८००० थीं।

राजा श्रेणिकको सम्यक्त्व और मेघकुमार, नन्दीषेण आदिको दीक्षा।

संसाररूपी अटवीमें फंसे हुए भव्य प्राणियोंको बोध करनेके लिये श्री वीर प्रभु विहार करते हुए देवताओंके परिवार-सहित राजगृह नगरीमें पधारे। गुणशील चैत्यमें बनाये चैत्य वृक्षसे शोभित समवशरणमें प्रभु प्रतिष्ठित हुए। प्रभुके पधारनेका सुसंवाद सुन राजा श्रेणिक समस्त प्रधान, रानी, मन्त्री, पुत्रों सहित प्रभुके दर्शनार्थ वहां आये। उन्होंने प्रभुको तीन प्रदक्षिणा देकर बड़े ही भक्तिभाव सहित नमन किया। तदनन्तर योग्य स्थानपर बैठकर उन्होंने श्रद्धाके साथ प्रभुकी स्तुति की। तब प्रभुने उन्हें सम्यक्त्वका उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप राजा श्रेणिकने सम्यक्त्वको और अभयकुमार आदिने श्रावक धर्मको ग्रहण किया। उपदेशकी समाप्तिपर सब वीर प्रभुको नमन कर सानन्द अपने २ घरको गये।

घर जाकर श्रेणिक राजाके पुत्र मेघकुमारने अपनी माता धारिणी व पिता राजा श्रेणिकसे विनयपूर्वक प्रार्थना की कि मैं अब इस दुःखमयी संसारके कष्टोंको देखकर विस्मित हो गया हूं। इसलिये इस दुःखसे छूटकर वीर प्रभुकी शरणमें जानेकी आज्ञा चाहता हूं। पुत्रके यह वचन सुनकर माता–पिता दोनों दुःखित हुए और नाना प्रकारसे उसको समझाया, किन्तु मेघकुमार अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित न

हुआ। तब राजा श्रेणिकने कहा कि यदि तुमने दीक्षा ग्रहण करनेका ही निश्चय किया है तो कुछ समय राज्यसुख भोगनेके पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर लेना। पिताके अधिक आग्रहको देखकर मेघकुमारने यह स्वीकार कर लिया। तब राजाने बड़े उत्सवके साथ हर्षितचित्त हो मेघकुमारको सिंहासनपर बिठाया। तत्पश्चात् हर्षके आवेशमें आकर राजाने कहा—"हे पुत्र! अब तुम्हें और किस बातकी आवश्यक्ता है?" मेघकुमारने विनयपूर्वक उत्तर दिया—पिताजी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दीजिए। पुत्रके ऐसे भाव देखकर राजाने विवश हो दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी। पिताकी आज्ञा पा हर्षितचित्त हो, मेघकुमारने वीर प्रभुके निकट जाकर दीक्षा ग्रहण की।

जिस दिन मेघकुमार दीक्षित हुए थे, उसी दिन रात्रिमें मेघकुमार मुनि छोटे बड़ेके क्रमसे सबसे आखरी सोनेके स्थान पर सोये थे, इसलिये अन्दर-बाहर आने-जानेवाले मुनियोंके चरण बार-बार इनके शरीरसे टकराने लगे। इससे मेघकुमार दुःखित हो विचारने लगे कि मेरे वैभव रहित होनेसे ही ये लोग ठोकरें मार रहे हैं। इसलिये मैं प्रातःकाल प्रभुकी आज्ञासे इस व्रतको छोड़ दूंगा। प्रातःकाल होते ही व्रत छोड़नेकी इच्छासे मेघकुमार प्रभुके पास गये। प्रभुने केवलज्ञान द्वारा इसका हार्दिक भाव जानकर कहा—"ओ मेघकुमार! संयमके भारसे तू भग्नचित्त होकर अपने पूर्व भवको याद क्यों नहीं करता?

पूर्व भवमें तू विन्ध्याचल पर्वतके ऊपर मेरूप्रभ नामका हाथी था। एकवार वनमें भयंकर तुफान आया, उससे अपने यूथकी रक्षार्थ तुमने नदी किनारे तीन स्थंडिल बनाए। तुफानको जोर पर देख तुम उससे अपनी रक्षा करनेकी इच्छासे स्थंडिलोंकी ओर गये। किंतु दो स्थंडिल तुम्हारे जानेसे पूर्व ही मृगादिक जीवोंसे भर गये थे तब तुम तीसरे स्थंडिलके एक संकीर्ण कोने पर जाकर खड़े होगये। वहां खड़े खड़े अपना बदन खुजलानेके लिये तुमने एक पांव ऊपर उठाया, उसी समय एक भयभीत खरगोश दावानलसे रक्षा पानेकी इच्छासे तुम्हारे उस ऊपर ऊठाये हुये पांवके नीचे आकर बैठ गया। उसके प्राणोंको संकटमें जान तुमने अपना पैर ज्योंका त्यों ऊपर उठाये रक्खा, एवं स्वयं तीन पांवपर ही खड़े रहे। ढाई दिनके पश्चात् जब दावानल शांत हुआ, और सर्व छोटे बड़े प्राणी चले गये तब तुम अत्यंत तृष्णा—भूख आदिसे आकुल हो, पानीकी ओर दौड़े। किंतु अधिक समय तक तीन पांवपर खड़े रहनेसे तुम्हारा चौथा पैर जमीन पर न टीका। और तुम धड़ामसे भूमिपर गिर पड़े। भूख—प्यासकी मंत्रणासे तीसरे दिन तुम मृत्युको प्राप्त हुए। फिर दयाका पालन और अहिंसाके फलस्वरूप तुम राजा श्रेणिकके यहां राजपुत्र हुए। एक खरगोशकी रक्षार्थ जब तुमने इतना कष्ट सहन किया था, तब अब इन साधुओंके चरण-स्पर्शसे क्यों खेद करता है? जिस व्रतको तुमने धारण किया है, उसको पूर्ण कर भवसागरसे पार होजाओ।

प्रभुके इस वक्तव्यको सुन मेघकुमार संतुष्ट हुआ तथा अपनी निर्बल-

तापर पश्चाताप कर कठिनसे कठिन तपस्या करनेके लिये प्रवृत्त हुआ।

एक दिन भगवान्के उपदेशसे प्रतिबोध पाकर राजा श्रेणिकका दूसरा पुत्र नन्दीषेण दीक्षा ग्रहणको तत्पर हुआ। उसको भी राजाने बहुत समझाया, किन्तु जब उसने अपने दृढ़ संकल्पको न छोड़ा तो राजाने विवश हो दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी। जिस समय नन्दीषेण दीक्षा ग्रहण करने जारहा था, उस समय उसके अन्तःकरणमें मानों किसीने कहा कि "वत्स ! तू अभीसे व्रत ग्रहणको क्यों तत्पर हो रहा है? अभी तेरे चारित्रपर आचरण डालनेवाला भोग-फलकर्म शेष हैं। इसलिये जबतक उस भोगकर्मकी अवधि पूरी न हो जाय वहां-तक तुम घरमें रहो, पश्चात् दीक्षित होना। किन्तु उसने इस ओर कुछ भी लक्ष्य न दिया और वे वीर प्रभुके समीप आये। वीर प्रभुने भी उसे उस समय दीक्षा ग्रहण करनेसे मना किया, किन्तु उसने अपनी दृढ़ता न छोड़ी और क्षणिक आवेशमें आकर दीक्षित हो-गया। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्होंने अत्यंत उग्र तपस्या द्वारा अपना शरीर क्षीण करना शुरू किया, किन्तु जिस भोगफलका उदय टालनेमें तीर्थंकर भी असमर्थ हैं, उसको वे कैसे टाल सकते थे? उनका वह शेष भोगफल अन्तमें उदय हो ही गया।

एक दिन मुनि नन्दीषेण अकेले छट्ठका पारणा करनेके लिये शहरमें गये। भोगफलसे प्रेरित हो अकस्मात् उन्होंने एक वेश्याके गृहमें प्रवेश कर धर्म-लाभ ऐसा उच्चारण किया। वेश्याने उत्तर दिया— "मुझे तो अर्थ लाभकी आवश्यक्ता है, मैं धर्म-कर्मको क्या करूं?

" आनन्द " नामका ग्रहपति नगरश्रेष्ठि था एवं उसकी "शिवानन्दा" परम सुन्दरी पत्नि थी। वह बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओंका स्वामी था। वह वीर प्रभुके आनेका वृतान्त जान हर्षित हो प्रभुकी वन्दनाके लिये प्रभुके समवशरणमें आया। उनके उपदेश श्रवण करनेके पश्चात् उसने गृहस्थोंके बारह व्रत ग्रहण किये, एवं उसकी स्त्री शिवनन्दाने भी इन्हीं व्रतोंको लिये। इसके पश्चात् चम्पानगरीमें कुलपति नामक गृहस्थने अपनी पत्नि सहित व्रत ग्रहण किये। इसप्रकार कई करोड़ स्वर्ण मुद्राओंके कई स्वामी सेठोंने गृहस्थ धर्मके नियम लिये। ये सर्व व्यक्ति बड़े ही धनाढ्य थे।

"पलाशपुर" नगरमें शब्दाल पुत्र नामका एक कुम्हार रहता था। यह कुम्हार आजीवक-सम्प्रदायके संस्थापक 'गौशाला' के मतका अनुयायी था। इसकी अग्निमित्रा स्त्री थी और ये तीन करोड़ मुद्राओंका स्वामी था। पलाशपुर नगरसे बाहर इसकी मट्टिके बर्तन बनानेकी पांचसौ दूकानें चलतीं थीं। एक दिन उसे सूचना मिली कि कल प्रातःकाल महाब्रह्म त्रैलोक्यपूजित सर्वज्ञ प्रभु यहां पधारेंगे। शब्दाल पुत्रने विचारा कि अवश्य ही मेरे धर्मगुरु "गौशाला" के विषयमें यह कथन है। ऐसा विचार वह प्रातःकाल प्रभुके समवशरणमें पहुंचा। प्रभुके उसने दर्शन किये। पश्चात् प्रभुने उससे कहा—हे शब्दालपुत्र! क्या कल किसीने तुझे कहा था कि कल सर्वज्ञ प्रभु यहां आयेंगे, और इसपर तुमने गौशालाके आनेका अनुमान किया था? यह सुन कुम्हार आश्चर्यचकित होकर विचारने लगा कि ये तो सर्वज्ञ महाब्रह्म

अर्हंत हैं, ऐसा विचार उसने भक्तिभाव सहित उन्हें पुनः नमन किया। इसके पश्चात् प्रभुने उसे अत्यंत मधुर शब्दोंमें "नियतिवाद" की कमजोरियां दर्शाकर उसे अपना शिष्य बनाया। उसने उसी समय भगवान्से श्रावक धर्म ग्रहण किये।

जब गौशालाको यह वृतांत मालूम हुआ तो वह पुनः उसको अपने मतमें मिलानेके लिये वहां आया। किंतु जब उसने उसकी ओर दृष्टिपात भी न किया तो वह गौशाला नैराश्य होकर वहांसे लौट आया।

यहांसे गमन कर वीर प्रभु सुरासुरोंसे सेवित राजगृह नगरके बाहर "स्थित गुणशील चैत्य" में पधारे! वहां महावग्ग नामका चौदह करोड़ मुद्राओंका स्वामी एक सेठ रहता था, उसकी रेवती आदि तेरह रानियोंने और उसने गृहस्थ धर्मके बारह व्रत ग्रहण किये। प्रभु वहांसे बिहार कर श्रावस्तीपुरीमें आये, जहां नन्दिनियता गृहस्थ रहता था, और इस गृहस्थकी "आश्रिनी" स्त्री थी। यह बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओंका अधिपति था। इसको भी वीर प्रभुने सकुटुंब श्रावक धर्ममें दीक्षित किया। इस भांति प्रभुके दस मुख्य श्रावक हुए।

अन्य कई स्थानोंमें भ्रमण करते एवं उपदेशामृत द्वारा लोगोंका कल्याण करते हुए वीर प्रभु पुनः "श्रावस्तीपुरी"में पधारे! यहां पर कोष्टक नामक उद्यानमें देवताओंने समवशरणकी रचना की। यहां पर "तेजोलेश्या" के प्रतापसे अपने विरोधियोंका नाश करनेवाला तथा "अष्टांगनिमित्त"के ज्ञान द्वारा लोगोंके मनकी बात बतानेवाला एवं

अपने आपको "जिन" बतलानेबाला गौशाला भी आया हुआ था। और एक कुम्हारकी दूकान पर ठहरा हुआ था। अर्हतके समान उसकी ख्यातिको सुन बहुतसे लोग आते एवं उसके अनुयायी बनते थे।

एक दिन प्रभुकी आज्ञासे गौतमस्वामी आहार लेनेके लिये नगरमें गये तो, उन्हें मालूम हुआ कि गौशाला यहां पर अर्हत और सर्वज्ञके नामसे विख्यात होकर आया है। इससे उन्हें खेद हुआ। उन्होंने आकर सबके सामने शुद्ध हृदय और सरल बुद्धिसे पूछा कि प्रभु! इस नगरीके लोग गौशालाको सर्वज्ञ कहते हैं। क्या यह वास्तवमें सत्य है? प्रभुने उत्तर दिया यह मंखलीका पुत्र गौशाला है और "अजैन" होता हुआ भी स्वयंको "जिन" कहता है। गौतम! मैंने ही उसको दीक्षा और शिक्षा दी थी, किन्तु पीछेसे यह मिथ्यात्वी होकर मुझसे अलग होगया है।

एक दिन श्री वीर प्रभुके शिष्य 'आनंद' मुनि आहार लेने नगरमें गये। मार्गमें उन्हें गौशाला मिला। गौशालाने उनसे कहा— अरे आनन्द! तेरा धर्माचार्य सभामें प्रतिष्ठित होनेकी इच्छासे मेरी निन्दा एवं अपनी प्रशंसा करता है। मुझे मंखली पुत्र गौशाला बताता है और कहता है कि—

यह अर्हत और सर्वज्ञ नहीं है। शायद आजतक वह मेरी शांति दहन करनेवाली तेजोलेश्याके प्रतापसे अपरिचित है। तू निश्चय रख, मैं उसे सपरिवार नष्ट कर दूङ्गा। हां! यदि तुमने मेरा विरोध न किया तो तुझे छोड़ दूङ्गा। आनन्द मुनिने यह सर्व वृतान्त वीर

प्रभुको आ सुनाया। फिर उन्होंने शंकित होकर कहा कि—प्रभु ! गौशालाने भस्म करनेकी बात कही है, क्या यह सत्य है? प्रभुने उत्तर दिया—अर्हतके सिवाय वह अपनी तेजोलेश्यके बल द्वारा सबको भस्म करनेमें समर्थ है। इसलिए तुम गौतम आदि मुनियोंसे कह देना कि उससे किसी प्रकारका संवाद न करें। आनंद मुनिने प्रभुकी यह आज्ञा सबको सुना दी। उसी समय गौशाला वहां आया और प्रभुको देखकर कहने लगा—ओ काश्यप! तुम मुझे मंखलीपुत्र एवं अपना शिष्य कहते हो। यह तुम्हारा मिथ्या भ्रम है। क्योंकि तुम्हारा शिष्य गौशाला तो शुक्कुलका था। एवं वह धर्मध्यानसे मृत्यु पा देवलोकको गया। उसके शरीरको उपसर्ग और परिग्रह सहन करनेयोग्य जानकर मैंने अपनी आत्माको अपने शरीरमेंसे निकालकर उसके शरीरमें डाल दी है! मेरा नाम "उदाय मुनि" है। अतः मुझे विना जाने ही तुम अपना शिष्य किसप्रकार कहते हो!

वीर प्रभुने कहा—चोर पुलिससे बचनेके लिये जिसप्रकार व्यर्थ रुई, सन आदिसे स्वयंको छिपानेका निष्फल प्रयत्न करता है, इसी-भांति तू भी क्यों झूठ बोलकर व्यर्थ अपने आपको छिपाता है? प्रभुके यह वचन सुन वह बोला—"अरे काश्यप!" आज तुम नष्ट-भ्रष्ट होजाओगे। उसके यह दुर्वचन प्रभुके शिष्य 'सर्वानुभूति मुनि' को सहन न हुए। वे बोले—

अरे गौशाला! जिन गुरु द्वारा तुमने शिक्षा एवं दीक्षा प्राप्त की है उन गुरुका इसप्रकार तिरस्कार कर तुम दोषके भागी होते हो? ये सुनते ही क्रोधावेशमें आकर गौशालाने उस मुनिपर तेजोलेश्याका

प्रहार किया । "सर्वानुभूति मुनि" उसकी ज्वालासे शुभ ध्यान द्वारा मृत्यु प्राप्त कर स्वर्गमें गये । गौशाला अपनी तेजोलेश्याकी शक्तिसे गर्वित हो, पुनः प्रभुका तिरस्कार करने लगा । तब सुनक्षत्र शिष्यने प्रभुकी निन्दासे क्षुब्ध होकर गौशालाके प्रति कठोर वचनोंका प्रयोग किया । उसने उनपर तेजोलेश्या सर्पके विषकी भांति छोड़ी और उसे सर्वानुभूतिकी भांति भस्म कर दिया । तेजोलेश्याका ऐसा परिणाम देख वह गर्वित हो प्रभुको अपशब्द कहने लगा । उसकी इस करणीपर प्रभुने शांतिपूर्वक कहा—गौशाला ! मैंने ही तुझे शिक्षा-दीक्षा देकर शास्त्रका पात्र बनाया था और मेरे ही प्रति तुम ऐसे अनुचित शब्द कहते हो? क्या यह तुम्हें शोभता है? इन वचनोंसे क्षुब्ध होकर समीप आ उसने प्रभुपर भी तेजोलेश्याका प्रहार किया । किन्तु जिस भांति भयंकर बवण्डर पर्वतसे टकराकर वापिस लौट आता है उसी प्रकार वह तेजोलेश्या भी लौट आई । और अकार्य प्रेरित करनेसे क्रोधित हो उसने उलटा गौशालापर प्रहार किया । उसके तेजसे गौशालाका समस्त शरीर अन्दरसे जल गया । जलते २ उसने दृढ़ता कर प्रभुसे कहा—अरे काश्यप ! मेरी तेजोलेश्याके प्रभावसे यदि इस समय तुम बच गये, किन्तु इससे उत्पन्न हुए पित्तज्वरके फलस्वरूप तुम्हारी छः मास पश्चात् छद्मस्थ अवस्थामें मृत्यु हो जायेगी । प्रभुने कहा—तेरा यह वृतान्त व्यर्थ है । मैं अभी इस कैवल्य अवस्थामें सोलह वर्ष तक और विहार करूंगा । किन्तु आजसे सात दिनके पश्चात् तेजोलेश्यासे उत्पन्न हुए पित्तज्वरके कारण तू मृत्युको प्राप्त होगा ।

कुछ समय पश्चात् गोशाला तेजोलेश्याकी जलनसे पीड़ित हो वहीं पड़ गया। तब गौतम आदि मुनियोंने अपने गुरुकी अवहेलनासे क्रोधित होकर कहा—अरे मूर्ख ! जो कोई अपने गुरुकी अवहेलना करता है, तथा प्रतिकूल होता है उसकी ऐसी ही दशा होती है। अब तुम्हारी तेजोलेश्याकी वह शक्ति कहां गई जिसके बलपर तुम भूल रहे थे ? यह वचन सुनकर वह गोशाला सिंहकी भांति पड़ा २ घूरने लगा। स्वयंको असमर्थ जान वह क्रोधके कारण फड़फड़ाने लगा, और कष्टसे कराहता हुआ अपने स्थानको गया।

छः दिन व्यत्तीत होनेके पश्चात् सातवें दिन उसको अन्त समय सत्य ज्ञानका उदय हुआ, एवं उसका हृदय पश्चातापकी ज्वालामें भस्म होने लगा। उस अवसर पर उसने अपने सर्व शिष्योंको बुलाकर कहा— शिष्यो ! मैं सर्वज्ञ नहीं ! केवली नहीं !! अर्हत नहीं !!! मैं मंखली पुत्र गोशाला, वीर प्रभुका शिष्य हूं। मैं अज्ञानतावश गुरुद्रोही एवं आश्रयको भस्म करनेके लिए गुरुके लिये अग्निके समान प्रतिद्रोही हुआ था। इतने समय तक जो स्वार्थ और दम्भ वश मैंने अपनी आत्मा तथा संसारको धोका दिया है, इसके लिये मैं कठिन पश्चात्तापसे जला जारहा हूं। मुझे मेरी करनीका उचित ही फल मिला। इसके लिये मैं तुम सबसे भी क्षमा प्रार्थना करता हूं। मुझे क्षमा करना ! ऐसा कह वह मृत्यु पा स्वर्गलोकको गया।

सुरासुरोंसे पूजित प्रभु विहार करते हुये "पोतनपुर"में आये। वहां मनोरम नामके उद्यानमें देवताओंने समवशरणकी रचना की। वहांका

राजा प्रसन्नचन्द्र प्रभुकी वन्दनाको आये। प्रभुका उपदेश सुन उनके हृदयमें उसी समय वैराग्य उत्पन्न हो आया, एवं उन्होंने अपने पुत्रको राज्य दे दीक्षा ग्रहण की। राजर्षि प्रसन्नचंद्र मुनि उग्र तपस्या करते हुये प्रभुके साथ भ्रमण करने लगे, एवं प्रभुके साथ कुछ समय पश्चात् राजगृह नगरीके बनमें आये।

जब राजा श्रेणिकको यह वृतान्त मिला कि प्रभु राजगृहके समीप बनमें आये हैं तो वह अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी रानी, मन्त्री, प्रजा सहित उनकी वंदनाके लिये गया। उसकी सेनाके आगे चलनेवाले सुमुख और दुर्मुख सेनापति मिथ्यादृष्टि थे। वे आपसमें नाना प्रकारका वार्तालाप करते जा रहे थे कि मार्गमें उन्होंने प्रसन्नचंद्र मुनिको देखा। वे एक पैरपर खड़े होकर दोनों हाथ ऊंचे किये हुए आतापना कर रहे थे? उनको देख सुमुखने कहा—ऐसी आतापना करनेवाली महान् आत्माके लिये स्वर्ग—मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह सुनकर दुर्मुखने उत्तर दिया कि यह तो पोतनपुरका राजा प्रसन्नचन्द्र है। इसने बाल अवस्थामें अपने पुत्रको इतने बड़े राज्यका भार देकर उसके जीवनपर संकट खड़ा कर दिया। उसके मंत्री चम्पानगरके राजा दधि-वाहनसे मिलकर इसके पुत्रको राज्यभ्रष्ट करनेके प्रयत्न कर रहे हैं। और इसकी पत्नियां भी कहीं चली गईं, क्या यह धर्म है? प्रसन्नचंद्र मुनिके दृढ़ ध्यानपर भी उनके इन वचनोंका वज्रके समान प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे कि मेरे उन नीच मंत्रियोंको धिक्कार है। मैंने

आजतक उनके आदरमें कोई कमी नहीं की। मेरे व्यवहारका उन्होंने यह प्रतिकार किया। मैं यदि इस अवसरपर वहां वर्तमान होता तो कठिन सजा देता। ऐसे ऊहा-पोहमें वे अपने ग्रहण किये हुए व्रतको भूल गये। और स्वयंको राजा मान वे मन ही मन मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे। इसी समय राजा श्रेणिकने वहां आकर विनयपूर्वक उनकी वन्दना की, तथा वहांसे श्रेणिक प्रभुके पास आये और वन्दनाकर कहने लगे—

"प्रभु! मार्गमें मैंने प्रसन्नचन्द्र मुनिकी ध्यानारूढ़ अवस्थामें वन्दना की है! प्रभु! मैं यह जाननेका इच्छुक हूं कि यदि वे इसी अवस्थामें मृत्युको प्राप्त हों तो कौनसी गतिको प्राप्त होंगे? प्रभुने उत्तर दिया—सातवें नर्कमें! यह सुन श्रेणिकको आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह जानते थे कि मुनि नर्कगामी नहीं होते। इसलिए उसको अपने कानोंपर विश्वास न हुआ। उसने पुनः पूछा—प्रभु! प्रसन्नचन्द्र मुनि यदि इस समय मृत्युको प्राप्त हों तो कौनसी गतिको प्राप्त होंगे? प्रभुने उत्तर दिया—सर्वार्थसिद्धि विमानमें जायंगे। श्रेणिकने कहा—प्रभु! आपने एक ही क्षणके अन्तरमें दो बात एक दूसरीसे विपरीत कही हैं इसका क्या कारण है?

प्रभुने कहा—ध्यानके भेदमें प्रसन्नचन्द्रकी अवस्था दो प्रकारकी होगई थी इसीलिये मैंने ऐसा कहा था। पहिले दुर्मुखके वचनोंसे वे क्रोधित हो मन ही मन मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे थे। जिस समय तुमने उनकी वन्दना की थी, उस समय उनकी वह स्थिति नर्कगति

योग्य थी। पश्चात् उन्होंने विचार किया कि अब तो मेरे सर्व आयुध व्यतीत होचुके हैं। इसलिये अब मैं शिरस्त्राण द्वारा ही शत्रुको पराजित करूंगा। ऐसा विचार उन्होंने अपना हाथ सिरपर रक्खा तो अपना लोप किया हुआ केश रहित शिर देख उन्हें अपने व्रतका ध्यान हो आया, और अपने किये पापोंका पश्चात्ताप हुआ। वे अपने इस कृत्यकी आलोचना करते हुए ध्यानारूढ़ होगये। उसी समय तुमने दूसरा प्रश्न किया तो उनको ध्यानमग्न अवस्थामें पा मैंने उसका दूसरा उत्तर दिया था।

इसप्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि इसी अवसरपर प्रसन्न-चन्द्र मुनिके समीप दुन्दुभि आदिका कोलाहल होने लगा। उसको सुनकर श्रेणिक राजाने प्रभुसे कहा कि स्वामी! यह क्या हुआ?

प्रभुने कहा—ध्यानमग्न प्रसन्नचन्द्र मुनिको इसी क्षण केवल-ज्ञानकी प्राप्ति हुई है। अतः देवता उस केवलज्ञानकी महिमा वर्णन कर रहे हैं। श्रेणिकने फिर कहा—प्रभु! अगले जन्ममें मैं कौनसी गतिको प्राप्त हूंगा?

वीर प्रभुने उत्तर दिया—तुम यहांसे मृत्यु प्राप्तकर प्रथम पहिले नर्कमें जाओगे वहां अपनी अवधि पूर्ण कर तुम इसी भरतक्षेत्रकी अगली चौबीसीमें "पद्मनाभ" नामसे प्रथम तीर्थंकर होगे। यह सुन श्रेणिकने नमस्कार कर कहा—प्रभु! आप जैसे जगदुद्धारक स्वामीके होते क्या मैं नर्कमें जानेसे वंचित नहीं रह सकता?

प्रभुने उत्तर दिया—राजन्! तुमने पूर्वभवमें जो पापसंचय कर रक्खा है, इसलिये तुम अवश्य नर्कमें जाओगे। क्योंकि पूर्व बन्धे हुए शुभ-अशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है, उसको मेटनेमें कोई समर्थ नहीं है। श्रेणिक कहने लगा कि प्रभु! कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे मैं इस गतिसे छूट जाऊं? प्रभुने कहा—हे राजन्! यदि तुम अपने नगरमें रहनेवाली कपिला ब्राह्मणीके हाथसे एक सहस्र साधुओंको भिक्षा दिला दो एवं "कालसौकरिक" कसाईसे जीव-हिंसा छुड़वा दो तो नर्कसे तुम्हारा छुटकारा हो सकता है, वरन् नहीं।

प्रभुके इन वचनोंको हृदयमें रख राजा घर गये। उन्होंने घर जाकर सर्व प्रथम ब्राह्मणीको बुलाकर कहा कि मैं तुझे द्रव्य देता हूं तुम श्रद्धापूर्वक साधुओंको भिक्षा दो।

उसने उत्तर दिया—यदि आप मुझे समस्त राज्य भी देदें तोभी मैं कदापि यह अकृत्य करनेको तैय्यार नहीं होसकती। तत्पश्चात् राजाने कालसौकरिकको बुलाकर कहा कि तू इस हिंसावृत्ति (कसाईके कार्य) को छोड़ दे तो मैं तुझे बहुतसा द्रव्य दूं। इसमें तेरी कुछ हानि भी नहीं, कारण द्रव्यके लिये ही तुझे यह कार्य करना पड़ता है।

कालसौकरिकने उत्तर दिया—इस कार्यसे जिससे अनेकों जीवोंकी रक्षा होती है, करनेमें क्या हानि है? इस कार्यको मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

उसके यह वचन सुनकर राजाने क्रोधित हो कहा—देखूं तू कैसे यह दुष्कार्य करता है। ऐसा कहकर राजाने उसको अन्धेरे कुएमें

कैद कर दिया। और फिर वे प्रभुके पास गये। उन्होंने जाकर प्रभुसे कहा कि प्रभु! मैं उस कसाईको अन्धकूपमें कैद कर आया हूं। इसप्रकार एक दिन और एक रात्रिके लिये मैंने उससे यह दुष्कृत्य छुड़वा दिया।

प्रभुने कहा—राजन्! उसने उस अन्ध कूपमें भी पांचसौ मिट्टीके भैंसे बनाकर मारे हैं। उसी समय श्रेणिकने वहां जाकर देखा तो वास्तवमें प्रभुका कहना सत्य निकला। यह देख अपने पूर्व उपार्जित कार्योंपर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे स्वयंको धिक्कारने लगे।

एक दिन पितासे आज्ञा लेकर अभयकुमार श्रेणिक राजाके पुत्रने प्रभुके समीप जाकर दीक्षा ग्रहण करली। अभयकुमारके दीक्षा ग्रहण किये पश्चात् श्रेणिक राजाके पुत्र कुणिकने षड़यन्त्र रचकर श्रेणिकको कारागृहमें बंद कर दिया एवं स्वयं राजा बन गया। असहाय कष्टोंसे ग्रसित हो श्रेणिकने आत्म-हत्या कर ली। कुछ समय पश्चात् कुणिकका "वैशालीपति चेटक" के साथ भयङ्कर युद्ध छिड़ा, जिसमें कुछ समय तक चेटककी जीत होती रही, किन्तु अन्तमें कुणिकने चेटकको पराजित कर दिया। तदनन्तर दिग्विजय करनेकी आशासे कुणिक सेना सहित निकला, किन्तु वह मार्गमें एक स्थानपर मारा गया। कुणिक राजाके पश्चात् वहांके प्रमुख प्रजागणोंने उसके पुत्र उदायीको सिंहासन पर बैठा दिया। इसने न्यायपूर्वक राज्य किया, तथा इसके द्वारा जैनधर्मकी अच्छी उन्नति हुई।

प्रभुका निर्वाण।

कार्तिक कृष्ण अमावस्याके दिन तीस वर्ष पर्यन्त अपने उपदेशोंद्वारा संसारको कल्याणमय संदेशा देकर बहत्तर वर्षकी आयुमें अपने शिष्य सुधर्माचार्यके हाथमें धर्मकी सत्ता देकर राजगृहके पास "पावापुरी"में महावीर प्रभुने निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिनकी रात्रिमें अपना मोक्ष जानकर प्रभुने विचारकिया कि गौतमका मुझपर अधिक स्नेह है एवं वही उनकी केवल्य प्राप्तिमें बाधा दे रहा है। इसलिये उस स्नेहका उच्छेद करना आवश्यक है। ऐसा विचार उन्होंने गौतमसे कहा—"गौतम! इस पास ही के गांवमें देवशर्मा ब्राह्मण रहता है, वह तुमसे प्रतिबोध पावेगा, इसलिये तुमको वहां जाना चाहिए।" प्रभुकी आज्ञा सुन गौतमस्वामी वहां पहुंचे तथा उस ब्राह्मणको उपदेश दे धर्ममें प्रवृत्त किया। इधर कार्तिक अमावास्याकी रात्रिको पिछले पहर स्वातिनक्षत्रके चन्द्रमामें प्रभुने पचपन अध्ययन पुण्यफलविपाक सम्बन्धी एवं उतने ही पापफलविपाक सम्बन्धी कहे। उसके बाद छत्तीस अध्ययन अप्रश्नव्याकरण विना किसीके प्रश्न किये ही वर्णन किये। जिस समय वे अन्तिम "प्रधान" अध्ययन कहने लगे, उसी समय इन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ। इन्द्र आसनके कम्पायमानसे, प्रभुका मोक्ष समीप जान परिवार सहित वहां आये। एवं प्रभुको वन्दना कर गदगद् कंठसे निवेदन किया।

प्रभु! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा एवं कैवल्यमें हस्तोत्तरा नक्षत्र था, इस समय उसमें "भस्मक" गृह संक्रान्त होनेवाला है। आपके

जन्मनक्षत्रमें संक्रमण हुआ, यह ग्रह दो हजार वर्ष पर्यंत आपके भावी अनुयायियोंको बाधा पहुंचायगा। इसलिये जबतक यह ग्रह आपके जन्मनक्षत्रमें संक्रान्त हो तबतक आप ठहरिये। यदि आपके सामने यह संक्रान्त होगया, तो आपके प्रभाव द्वारा वह निष्फल हो जायगा।

प्रभुने उत्तर दिया—इन्द्र! आयुष्यको बढ़ानेमें कोई समर्थ नहीं, इस बातसे परिचित होते हुए भी मोहवश क्यों तुम ऐसा कहते हो?? आगामी पंचमकालकी प्रवृत्तिसे ही तीर्थको बाधा होनेवाली है, अतः उसी भवितव्यताके अनुसार इस ग्रहका उदय हुआ है।

इस भांति प्रभुने इन्द्रका समाधान कर स्थूल मनोयोग एवं वचनयोगको रोका, फिर सूक्ष्म काययोग—स्थिर होकर प्रभुने स्थूल काययोगको भी रोक लिया, पश्चात् वाणी एवं मनके सूक्ष्मयोगको भी उन्होंने रोक लिया। इस प्रकार उन्होंने शुक्लध्यानकी तीसरी स्थिति प्राप्त की। पश्चात् सूक्ष्म काययोगको रोककर समुच्छिन्न क्रिया नामक ध्यानकी चौथी स्थितिको धारण की। बादमें ह्रस्वाक्षरोंका उच्चारण कर शुक्लध्यानकी चौथी सिड़ीमें एरण्डके बीजके समान कर्मबन्ध रहित हो, ऋजुगतिके साथ ऊर्ध्वगमन कर प्रभुने मोक्षको गमन किया उस समय नारकियोंको भी, जिनको एक निमेषका सुख भी दुर्लभ है, एकक्षण सुख प्राप्त हुआ। प्रभुका निर्वाण जान सब राजा प्रजाओंने देश—देशांतरोंमें तथा देवताओंने द्रव्य—दीपकोंकी रोशनीकी एवं निर्वाणोत्सव मनाया। तभी इस दीपावली पर्वका आरम्भ हुआ। प्रभुके निर्वाणके समय चतुर्थ कालमें तीन मास साड़ेसात दिवस शेष थे।

वीर शासन।

जब देवशर्मा ब्राह्मणको धर्ममें प्रवृत्त कर गौतमस्वामी वापिस आये तो मार्गमें ही उन्हें प्रभुके निर्वाणका समाचार मिला। उस समय उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उस समय प्रभुके प्रति रहा हुआ ममताका प्रादुर्भाव टूट गया। उसके टूटते ही उन्हें कैवल्यकी प्राप्ति होगई। पश्चात् बारह वर्षपर्यंत उन्होंने भ्रमण कर अनेक भव्यजीवोंको धर्मका मार्ग दर्शाकर वे मोक्षको गये।

उपसंहार।

वीर प्रभुका संक्षिप्त जीवनचरित्र प्रियपाठक एवं पाठिकाओंके सामने रक्खा जाचुका। वीर प्रभुके इस जीवनचरित्रका अध्ययन कर पाठकगण भलीभांति समझ सकते हैं कि उनके जीवनका एक २ अङ्ग कितना महत्वपूर्ण था एवं उनके जीवनकी प्रत्येक घटनायें कितना गहन अर्थ रखती है।

संसारके इतिहासमें जिन महान आत्माओंने अपने सर्वस्वका जगत्की वेदी पर बलिदान किया था, जिन्होंने अपने कल्याणके साथ २ प्राणी मात्रके कल्याणका हृदयसे प्रयत्न किया था, उनमें हमारे वीर प्रभु भी एक हैं। वे केवल अपने ही जीवनको दिव्य एवं उज्ज्वल बना कर नहीं रहगये थे, उन्होंने संसारके सन्मुख उस दिव्य तत्त्वका उदार संदेशा रक्खा जिसका अनुकरण कर संसारका एक हीनसे हीन व्यक्ति भी अपना कल्याण कर सकता है। उन्होंने हमारे सामने ऐसा दिव्य कल्याणकारी मार्ग दर्शाया, जिससे स्थायी शांतिका साम्राज्य स्थापित किया जासकता है।

वीर प्रभुने, जिस समय संसारमें घोर अन्धकार एवं हाहाकार फैला हुआ था, पशुबलि जैसी भयंकर हृदयविदारक प्रथा प्रचलित थी, हजारों लाखों पशुओंको जीवित अग्निमें जला दिया जाता था, ऐसे समयमें अपने दिव्य उपदेश द्वारा हमें हमारा मार्ग सुझाया। अत्याचार एवं कुरीतियोंको मेटा। उन्होंने लोकहितार्थ सुख एवं शांतिका

पारलौकिक संदेश दिव्यध्वनि द्वारा दिया। तथा धर्म, अधर्म, तत्व, अतत्व, पुण्य पापका यथार्थ बोध कराकर संसार रूपी अटवीमें भ्रमण करनेवाले भव्य जीवोंको सन्मार्ग सुझाकर उनके पारस्परिक वैर, विरोध, राग, द्वेष आदिको दूर किया, उनकी भूलोंको सुधार अन्याय एवं अत्याचारसे पीड़ित जनसमुदायको कष्टोंसे छुड़ाकर विश्वभरको सुख-शांतिका मार्ग दर्शाया।

किन्तु वर्तमानमें वीर प्रभुके अनुयायियों—जैन समाजकी ओर दृष्टि करनेसे, उनके किये कृत्यों तथा कर्मोका अवलोकन करनेसे एक भयंकर विपरीतता दृष्टिगोचर होती है। आह! कहां वीर प्रभुका दिव्य उपदेश और कहां आधुनिक जैन समाज!

वर्तमानमें हम जैन बननेका दावा करते हैं और जैनी कहलाते हैं, किन्तु जैन धर्म क्या वस्तु है, उसका क्या उद्देश्य है, हमारा क्या कर्तव्य है, हमें क्या करना उचित है, यह हममेंसे बहुत कम बहिन—भाई जानते हैं। हम केवल जैन धर्ममें रहनेहीसे जबतक जैन धर्मकी वास्तविकताको न समझे तबतक जैनी नहीं कहला सकते। जैन धर्म विषयक पालन करनेकी क्रियाओंमें वर्तमानमें हमारा कितना वैषम्य होचुका है कि हमारे आचार-विचार उसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। वर्तमानमें हमारा मन जैन धर्मके सिद्धान्तोंसे हटकर ढोंगोंमें लगा हुआ है। हम धर्मके नामपर जिन विचारोंका पोषण कर रहे हैं, उनमें बहुतसी बातें ऐसी भी हैं जो लोकरूढ़ि द्वारा ही हमतक पहुंची हैं तथा एक धर्मका अङ्ग समझी जाने लगी, हम उनकी

निःस्वार्थताको दृष्टिकोणमें रखते हुए भी केवल धार्मिक संभावना वश उन्हें अपनाये हुए हैं। इसप्रकार हम अपनी अज्ञानतावश अपना और दूसरोंका एक बड़ा हित खतरेमें डाल रहे हैं। जबतक हम वीर प्रभुके बतलाये हुए उपदेशोंको तथा उसके मर्मको वास्तविक रूपमें नहीं समझेंगे, धर्म अधर्म विषयक उचित संस्कार न करेंगे, हेय क्या है और उपादेय क्या है इसका विश्लेषण न करेंगे, तबतक हमारे हित साधनकी अभिलाषा कदापि पूर्ण न होसकेगी।

अफसोस! सख्त अफसोस!! जिन वीर प्रभुका संदेश आकाशसे गम्भीर था, आज उनका अनुयायी जैन समाज संकीर्णताके गहरे दल दलमें फँसा हुआ है। जो वर्द्धमान प्रभु, अपने अलौकिक वीरत्वके कारण "महावीर" कहलाये थे, उनकी सन्तान पहले सिरेकी कायर हो?

जिन वीर प्रभुने प्रेम एवं मनुष्यताका उदार संदेश मनुष्य जातिको दिया था उनकी सन्तान लड़ाई, रागद्वेष, फूट आदि द्वारा अपने २ अस्तित्वको मिटानेका प्रयत्न करें? कहां उनकी उदारता और कहां हमारी निष्ठुरता? कहां तो उनका उदार सन्देश, कहां हमारी कलह-प्रियता? किसी समयमें जिस जैनसमाजके अन्तर्गत जैनधर्मकी दुन्दुभी बजती थी, वहां आज जैन समाज संसारकी दृष्टिमें हास्यास्पद होरहा है। समाजके अन्तर्गत विधवाओंके प्रति अत्याचार, अनमेलविवाहादि कुरीतियां घर कर रही हैं। हम पारस्परिक राग, द्वेष आदि झगड़ोंके कारण अपने वास्तविक सिद्धांतोंको भूलगये हैं। इन हठवादिता एवं

दुराग्रहके कारण भौतिकताके फेरमें पड़कर आध्यात्मिकताको तिलांजलि दे दी है । इन्हीं मतभेदोंके कारण हम जैन धर्मके सिद्धांतोंसे बहुत दूर जा पड़े हैं । यदि आज किसी जैनीसे प्रश्न किया जाय कि स्याद्वाद क्या है, अनेकान्तकी रचना किन सिद्धांतोंके आधारपर की गई है, तथा जैन धर्मका अहिंसा तत्व किन आधारोंपर अवलंबित है, तो इस समुचित प्रश्नका उत्तर मौन मिलेगा । मिले कैसे ? क्योंकि जैन समाजका अधिकांश द्रव्य लड़ाईके कारण अदालतों और धर्मशाला बनवाने, प्रतिष्ठा, नवीन मंदिरोंकी रचना करने, और विवाह शादीमें वाहवाही लूटनेमें व्यय हो जाता है । धर्मप्रचार, साहित्यका निर्माण, शिक्षा आदिकी ओर हमारा ध्यान बिलकुल नहीं जाता, क्योंकि हमें राग, द्वेष आदि लड़ाई झगड़ोंसे ही अवकाश नहीं मिलता । धर्मके नामपर अत्याचार किये जाते हैं । एक मत अपने मतको ऊंचा बताने और दूसरेको नीचा करनेकी इच्छासे मुकदमा लड़ता है, मंदिरों आदिका द्रव्य व्यय होता है । हमारी समस्त शक्तियां इन्हीं झगड़ोंमें लगी हुई हैं, हम इनमें फंसकर वास्तविक जैनत्वको भूल गये हैं । हमें इन झगड़ोंको छोड़कर वीर प्रभुके बताये हुए दिव्य संदेशका अध्ययन करना आवश्यक है । हमें उसमें देखना और विचारना चाहिए कि उनके जीवनकी पवित्रता एवं हमारे राग, द्वेष आदि मतभेदोंमें कितना अन्तर है । वीर प्रभु स्वप्नमें हठ एवं दुराग्रहके अनुमोदक नहीं हुए फिर उनकी सन्तान होकर हमारा हठ एवं दुराग्रहके फेरमें पड़ना क्या अनुचित्त नहीं है ? जो द्रव्य हम

व्यर्थके झगड़ोंमें और प्रतिष्ठा प्राप्तिमें व्यय करते हैं, यदि उसीको हम वीर प्रभुके सिद्धांतोंके प्रचार, जैन धर्मके प्रचारमें लगावें तो उससे हमारा कितना उपकार होसकता है? इसी द्रव्यसे यदि बच्चोंकी शिक्षाके लिये विद्यालयोंकी आयोजना की जाय, इसी द्रव्यको यदि विधवाओं, अबलाओंकी सान्त्वना, आर्थिक रक्षार्थ, आश्रम आदि खोलकर धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय, रोगियोंके लिये औषधालयोंकी स्थापना की जाय, अनाथोंके लिये भोजनशालाओंका प्रचार किया जाय, तो हम कितने पुण्य और यशके भागी होसकते हैं। मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि मंदिरोंकी रचना, धर्मशालाओं, प्रतिष्ठा आदिमें द्रव्य-व्यय ही न किया जाय। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि जहांपर मंदिर, धर्मशालाएं मौजूद हैं वहां अधिक बनानेकी इतनी आवश्यक्ता नहीं, क्योंकि इन कार्योंके साथ २ सचेतन प्राणियोंकी रक्षार्थ उपाय करना भी आवश्यक है।

यदि हमारी इच्छा है कि वीर प्रभुके सिद्धान्तोंका प्रत्येक घरमें प्रचार हो, यदि हमारी इच्छा सच्चे जैन, अनुयायी कहलानेकी है, तो हमारा यह कर्तव्य सर्व प्रथम है कि हम अपनी आत्मीक उन्नति करें। यदि हम इहलौकिक शांतिके साथ २ पारलौकिक सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो इस दुराग्रह एवं हठवादिताका त्यागकर जिन धर्मकी वास्तविकताको अपनायें।

जबतक हमारे हृदयमें स्वार्थ, घृणा, रागद्वेष, विरोध, विद्रोहके स्थानपर परमार्थ, प्रेम, सहानुभूति और दयाकी भावनाएं उदित न होंगी

वीर जीवन।

जबतक हम जड़के लिये चेतनका अपमान करते रहेंगे, तबतक हमारी जाति, हमारा धर्म, कैसे उज्ज्वल होसकता है? कैसे लौकिक और पारलौकिक हित होसकता है?

किसी भी जातिके जब दुर्भाग्यका उदय आता है, तब वह अपने पूर्वजोंके बतलाये हुये सिद्धांतोंको भुलाकर उनके विपरीत चलने लगती है, और यही कारण उसके अधःपातका होता है। वह धर्मकी वास्तविकता भूल जाती हैं, धर्मको छोड़कर मिथ्यात्वको अपनाने लग जाती है एवं अपनी अज्ञानतावश संगठनका नाशकर तितर वितर होजाती है। यही हाल हमारी जैन जातिका होरहा है। जिन जैन अनुयायियोंकी कुछ समय पूर्व कई करोड़ संख्या थी, आज उन जैनियोंकी संख्या केवल बारह लाख जैन, इसमें भी हमारी न क्रिया है न धर्म, हमारा बहुत पतन होगया है। हम जैनत्व एवं मनुष्यत्वको बिलकुल भूलगये हैं। यदि हम अपनी जातिको ऊंचा उठाना चाहते हैं, अपना अधःपात रोकना चाहते हैं तो हमारा यह मुख्य कर्त्तव्य है कि हम पारस्परिक वैर विरोध, राग, द्वेष आदिकी भावनाओंको भूलाकर एकाग्रह हृदयसे पूर्णतया संगठनका प्रयत्न करें। मिथ्यात्वका नाश कर जैन धर्मकी वास्तविकताको अपनाकर सच्चे वीर प्रभुकी सन्तान होनेका गौरव प्राप्त कर, अपना मस्तक उन्नत करें।
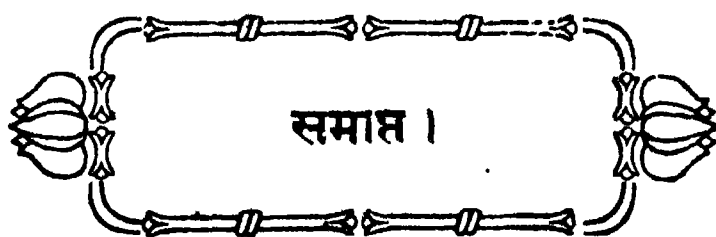
श्री वीराष्टक।

भक्तिसे प्रेरित होकर आज,
शरणके हम हैं अभिलाषी।
विरद सुन-सुन कर आये हैं,
वीर दो जान दीन आशीष॥

तनिक सा भेक एक अज्ञान,
फूलसे पूजनको आया।
सुगतिका भागी था इससे,
मिलेगा नहिं तू हमको क्या?

शान्त-रस-पूरित तेरी मूर्ति,
प्रभावित कौन नहीं होता।
देखकर एक बार भी जो,
स्वयंको नहीं भुला देता॥

अविद्याके बादल काले,
चतुर्दिक छा जाते हैं जो।
ठहरते क्या सम्मुख हैं जब,
प्रगट तब ज्ञान-भानु हो तो॥

वीर जीवन।

जगतके विपद्ग्रस्त सब जीव,
लगाते तुझपर हे प्रभु आस।
मूढ़ है कौन निरा जो त्याग–
सूर्यको, जाय दीपके पास॥

ज्ञानमय चान्द्रमसी फैली,
कमी है शीतल एक समीर।
व्यथित हो चिन्तानलसे निज,
पथिक हैं आते ले भव पीर॥

हुए हैं तेजस्वी बहु वीर,
तुझे वे पा सकते कैसे।
दर्शसे केवल जिसके आ,
नम्र थे ज्ञानी गौतमसे॥

ईश हो कृपा–सुधाके सिन्धु,
तृषित हैं अति ही हे हम वीर।
दयाकी कोर इधर हो चन्द्र,
झड़ीकी एक लगादो भीर॥

नमो जिनाय।

पौराणिक कथाके आधारपरः-

भ्रातृ प्रेमकी एक झलक।

वीर अकलंक-निकलंक।

[ले०-पं० बाबूलाल जैन बनारसी न्याय-काव्यतीर्थ, सुपरिन्टेन्डेन्ट,

श्री० सौ० शाणीबाई दि० जैन बोर्डिंग-दाहोद।]

इस भव्य भारत वसुंधरा पर न जाने ऐसे कितने ही पुण्यपुरुष पैदा होगये जिनके गुण-गौरवकी गाथा आज भी प्रकृति देवी किसी मौन स्वरमें गाया करती है। ऐसे २ बलिदानी वीर पैदा होगये जिनके बलिदानोंकी वार्तायें मुर्दा दिलोंमें भी जानें डाल देती हैं, कितनी ही खूनको उबाल देती हैं, और कितनी ही ऐसी हैं जो कि अमर त्यागकी ओर लेजाती हैं।

(१)

बौद्धोंका जमाना—दो भाई, बचपनके खिलाड़ी एक ही मांके गोदके लाल, भ्रातृप्रेमके अंकुर, आंखोंके सितारे, अमन चैनकी घड़ियां बिताते, सरोवरोंमें हंसोंकी कूजन, बागोंमें कोयलकी काकलीसे गानकी तरङ्गमें मग्न, कभी अपनी स्नेहमयी मांसे अपने पूर्वजोंकी कहानियां सुनते, कभी अपने वीरत्वकी महत्वाकांक्षा करते तो कभी करुणानदीमें

स्नान करते गोते लगाते, किलोलें करते, आपसमें हिल मिलकर रहते, विद्या पढ़नेके योग्य हुये ।

अंतःकरणकी प्रेरणा या होनहारकी उत्कटतासे । बोले अपनी स्नेहागार मांसेः—

" मां, हम दोनो ओं नामा सीधं सीखेंगे, गुरुकुलमें जावेंगे।"

अपने लाड़ले, दुलारे पुत्रोंको लड़खड़ाती हुई तोतली मनोहर वाणी सुनकर मांका हृदय गद्गद होउठा और बोली चूमा लेकर- " हां बेटा, अब तुम पढ़ोगे ! गुरुकुलमें जाओगे, अपनी मांको छोड़कर ।"

" हां मां, हम पढ़ेंगे, गुरुकुलमें जावेंगे, और तुम्हें भी नहीं छोड़ेंगे, हां क्यों न मां "।

अपने भोलेभाले निरीह बालकोंकी मीठी वाणी सुनकर मांके मुखपट मन्द मुस्कराहटकी लहर दौड़गई, अपने बच्चोंकी जुदाईका संदेशा सुनकर घबराई । किंतु " ओं नामा सीधं " सीखेंगेको याद कर हर्षसे उन्मत्त हो उठी, आखिर बोली—

" बेटा, जाओ, पढ़ो और देखो, हमें भी न भूलजाना, समझे "।

अपने लाड़ले पुत्रोंको गुरुकुल भेजते हुये मांका स्नेहसागर उमड़ उठा। जुदाईके संदेशने तूफानी बना दिया, हृदयमें न समा सका। इसीलिये मानों आंसुओंके बहाने बाहिर आगया। धन्य है वह हृदय और वह प्रेम ।

(२)

गुरुकुलके प्रशांत वातावरणमें दोनों विद्याभ्यास करने लगे और दिन दूनी रात चौगुनी चंद्रिकासी अपनी प्रखर बुद्धि और प्रतिभा द्वारा अपने गुरुओंके प्रसाद और आश्चर्यके भाजन बन गये।

जिनके गुरु बौद्ध होते हुये भी जिन्होंने केवल यही अभ्यास किया था।

"श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलांच्छनं।
जीयात्त्रैलोकनाथस्य शासनं जिनशासनम्"।

(३)

एक दिनकी बात, गुरुदेव पढ़ाते २ किसी अर्थमें चकरा गये, दिमाक घूमने लगा, किसी बहाने वे बाहर घूमने लगे, दोनों भाई, गुरुकुलकी कक्षामें बैठे २ समझ गये गुरुदेवका मतलब और धीरेसे कलम चलाकर दिया अर्थ सरल !

(४)

गुरुजी कुछ देरके बाद शालामें आये और सुधरी हुई पंक्तिको देखकर आश्चर्यसमुद्रमें गोते लगाने लगते हैं—सोचते हैं—कोन ऐसा शिष्य है मेरे गुरुकुलमें जो बौद्ध धर्मके विरुद्ध जैनधर्मका अनुयायी और शास्त्र-प्रवीण हो ?

गुरुजीने हरएक प्रकारसे जांच करना शुरू करदी, सब शिष्योंकी। आखिर सच्चाई कहांतक छिप सकती है। 'अरहन्त' को भजते हुये

दोनों वीर भाई पकड़े गये और कर दिये गये तालोंके अन्दर श्रृंखलाओंसे सन्नद्ध ।

(५)

रात्रिका अन्तिम प्रहर, तारे टिमटिमा कर अनन्तकी गोदमें विलीन होरहे थे। प्रकृतिने निराला ही परिधान ओढ़ा था। श्री अरहन्त आराधनामें संलग्न दोनों भाई "श्रीपति जिनवर करुणायतन दुखहरण तुम्हारा बाना है" की माला जपने लगे। उस भयंकर घटनाको जो कि सुबह होते ही उनको फांसीके तख्तेपर लटका देनेवाली थी यादकर वे उन तालोंकी श्रृंखलाओंको तोड़कर निकल भागनेकी तजवीजमें लग गये ।

(६)

आखिर भगवानकी भक्तिका प्रसाद "ॐ नमः सिद्धं" कहते २ उनको सरल मार्ग मिल गया और निकल पड़े वनकी ओर ।

"भैया, अगर सेना हमको पकड़ने पीछे दौड़ाई गई तो तब अपन क्या करेंगे'

"नहीं भैया, चिंता न करो, भगवान मदद करेंगे जिनके नाम स्मरणसे उस भयंकर कालकोठरीसे भी रास्ता ढूंढ़ निकाला"।

दोनों भाई इस प्रकार आपसमें सांत्वना दिलाते हुये हवाके झकोरोंके साथ भागे जारहे हैं, वनकी ओर ।

(७)

सुबहका समय:—

" अरे वे भाग गये, बंदिगृहसे निकल गये " शोरगुल मचगया।

राजाके पास खबर पहुंचते ही हुकुम मिलता है:—

" पकड़ो उन धर्मद्रोहियोंको, छिपकर मेरे शासनकी सीमा तोड़नेवालोंको, दौड़ाओ पलटन और लाओ उनकी गरदन काटकर।"

(८)

हुकुम पाते ही सेना पीछे दौड़ती है, घोड़ोंकी टपाटप आवाज और धूलिसे गगन मण्डल व्याप्त होते हुये देख दोनों भाई चौंक पड़े, बोले—

"भैया—अकलंक, अब क्या करना चाहिये, सेना बड़े वेगसे, सिरपर आ रही है, दोनों पकड़े जांयगे और फांसीके घाट उतार दिये जांयगे।"

"भैया निकलंक, संसार असार है, आओ हम तुम गलेसे गले मिललें, प्यारे भैया, आओ अपने मातापिताको अन्तिम प्रणाम करें।"

"भैया, यहां कौन है, किससे कहें कि मां तुम्हारे लालोंने तुम्हारी गोदी सूनी कर दी।"

"नहीं भैया! चिन्ता न करो, आज हमारी आवाजको ये हरेभरे वृक्ष ही सुनायेंगे। और ये कलकल वहती नदी और उसकी

लहरें ही गवाही दे देंगी। आओ! फिर एकवार भगवानके नामकी माला जपें। नहीं, नहीं भैया! तुम अकलंक हो, मेरे पूज्यनीय हो, तुमसे संसारका कल्याण होगा। मैं तुम्हें असमयमें ही परलोक नहीं जाने दूंगा।

(९)

सेना बढ़ी आरही है। निकलंक अपने प्यारे भाई अकलंकको कमलोंमें छिप जानेका आग्रह करते हैं, किन्तु बहचली आंसुओंकी धारा जब अकलंक छिपे जलमें।

(१०)

अपने भैयाको सुरक्षित कर आनंदमें उन्मत्त निकलंक भगवानकी माला जपते हुये एक रजकको साथ लेकर दौड़ने लगते हैं। मेरा अकलंक माताकी गोदीका लाल रहे, कहकर निकलंक भाईके खातिर वीर गतिको प्राप्त करते हैं। धन्य हैं वे भाई और अमर है यह भातृप्रेमकी एक झलक!